बहारें लौट आयेंगी

वसी इक़बाल एम. ए.

अनुवाद

मंज़ूर फ़ाख़िर बी. ए.

बिस्मिल्लाहिर्रमानिर्रहीम
'अल्लाह दयावान कृपाशील के नाम से'

मेरा पैत्रित नाम 'श्यामलाल' है और अब मुझे रियाज़ अहमद ; नाम से पुकारा जाता है। मैं अपने गांव 'ढोला' में जो शहर सनाबाद से लगभग २५ मील दूर दक्षिण में स्थित है 'सन् १२७५ ० में पैदा हुआ था। अपने जीवन के अधिकांश दिन मैंने इसी शहर i गुज़ारे हैं। मेरे पूर्वज जो ब्राह्मण जाति से सम्बन्ध रखते थे, पूरे लाके के धार्मिक नेता माने जाते थे। धार्मिक नेतृत्व का यह उच्च द अपने पिता के बाद उत्तराधिकार के रूप में मुझे मिलने वाला था ोर भविष्य में इस ज़िम्मेदारी को निभाने की मैं अपने पिता की गरानी में तरबियत पा रहा था। यह क्षेत्र अपनी उपजाऊ धरती, त्तम पैदावार तथा अनेक प्रकार के बाग़ों के लिए बहुत मशहूर है। तः इस इलाके के निवासी ख़ास तौर से 'ढोला' के लोग जो लगभग ार पांच सौ की संख्या में थे, यद्यपि बहुत अधिक मालदार नहीं थे फर भी ख़ुशहाल ज़रूर कहे जा सकते थे। इसी कारण हमारे रिवार की हालत बहुत अच्छी थी। हमारे घर तीज–त्यौहार तथा सरे अनेक अवसरों पर काफ़ी तादाद में अनाज तथा माल आदि आ ाता था जिसने हमें काफ़ी मालदार बना दिया था।

आमतौर से उस नगर के अधिकांश घर मिट्टी तथा फूंस के बने ये थे। यद्यपि कुछ लोगों ने जो अधिक मालदार थे और जिनमें मारा परिवार भी शामिल था, अपने रहने के लिए पक्के कोठे नवा लिये थे।

हमारे घर के करीब एक मन्दिर था, उस की देख–रेख हमारे

ख़ानदान के सुपुर्द थी और यह मन्दिर केवल ऊंची जाति के लोगों वे लिए था।

दूसरा मन्दिर नगर के पूर्वी किनारे पर उन छोटी जाति वे लोगों के लिए था, जो गांव में भारी संख्या में मौजूद थे। इस मन्दि से न हमारा कोई सम्बन्ध था और न इसमें कोई ऊंची जाति वाल पूजा के लिये जाता ही था।

एक बार मेरे पिता ने मुझे बताया था कि हम लोग गांव के मुख्य निवासी नहीं हैं। बल्कि अब से सौ–डेढ़ सौ साल पहले हमारे ख़ानदान के कुछ लोग यहां आकर आबाद हो गये थे। उस समय हमारी माली और आर्थिक दशा भी इतनी अच्छी न थी और न कोई धार्मिक हैसियत से हमारे परिवार का इतना अधिक महत्व था। यह सारी चीज़ें आदर, सम्मान, सत्कार, महिमा, माल–दौलत और धन–सम्पत्ति सब कुछ यहीं आकर हासिल हुआ।

हमारे घर में मेरे अलावा मेरे माता–पिता, तीन छोटे भाई, दो छोटी बहिनें और दो ताया (ताऊ) रहते थे। यह दोनों ताया अभी अविवाहित थे और मेरे माता–पिता के ही साथ रहा करते थे।

मुझे अपने लोगों और बहिन–भाइयों के बीच रह कर अत्यधिक आनन्द मिलता था और यह बात तो मेरे लिए वास्तव में बड़ी खुशी की थी कि पिता के बाद उस पूरे क्षेत्र के धार्मिक नेतृत्व का सौभाग्य मुझे हासिल होगा।

हमारे यहां यों तो छोटे–बड़े अनेक त्यौहारों का रिवाज था, परन्तु कुछ त्यौहार ऐसे भी थे जो ख़ास तौर से मनाये जाते थे। उन में दशहरा मेरा सब से प्यारा त्यौहार था। इसका दूसरा कोई कारण हो या न हो, लेकिन यह कारण अवश्य था कि जब इस अवसर पर रामलीला खेली जाती थी तो श्री रामचन्द्र के बचपन का पार्ट मुझे

मेला करता था।

आप समझ गये होंगे कि हमारा गांव भूखों-नंगों का गांव नहीं था। हर व्यक्ति को थोड़ा-बहुत अपना पेट भरने और तन ढांकने के लेये कुछ न कुछ मिलता ही रहता था। परन्तु आपका यह सोचना सही नहीं कि उस ख़ुशहाल और भारी उपज वाले क्षेत्र में लोग सन्तुष्ट और शान्तिपूर्वक रहते होंगे। ऐसा नहीं था, यह क्षेत्र जहां अपनी उपजाऊ भूमि उत्तम पैदावार तथा विभिन्न प्रकार के बाग़ों के लिये प्रसिद्ध था, वहां उसे इस पहलू से भी शोहरत हासिल थी कि यहां चोरी, डकैती, बलात्कार तथा हत्या आदि की घटनाएं अधिक हुआ करती थीं। मुझे याद नहीं जिस दिन मैंने यह न सुना हो कि आज उस व्यक्ति का खेत कट गया, उस व्यक्ति के घर आग लगा दी गई और उस व्यक्ति को क़त्ल कर दिया गया। हां यह तो आम सी बात थी कि इस की पत्नी उसके साथ भाग गयी तथा उस की पत्नी इसके साथ चली गई।

मेरे पिता जी ने कुछ दिनों के लिए मुझे मेरी ननिहाल हसनाबाद भेज दिया। उस समय मेरी उम्र लगभग १६ या १७ साल थी। मैं कुछ दिनों तो अपनी नानी के यहां बड़ी हंसी-खुशी के साथ रहा फिर मुझे अपना घर बहिन-भाई, नदी का किनारा, बाग और अपने यार दोस्त याद आने लगे। फिर भी मुझे एक मुद्दत तक अपनी नानी के यहां रहना पड़ा। मेरी नानी पुराने विचारों की एक सीधी–साधी सी औरत थीं, लेकिन एक बात जो मैंने उनमें खास तौर से देखी वह यह थी कि वह किसी बात की इसलिए उपेक्षा नहीं कर देती थीं कि वह बात उनके सामने पहली बार आई है या किसी ऐसे व्यक्ति ने रखी है जिसे वह पसन्द नहीं करती हैं। कोई भी बात होती वह हमेशा सबसे पहले इसकी अच्छाई-बुराई पर सोच-विचार करतीं। यदि वह वास्तव में अच्छी होती, तो उसे अपना लेतीं और अगर उसमें किसी

बुराई का पहलू होता, तो उसको छोड़ देतीं।

उन ही दिनों जब मैं अपनी नानी के पास रह रहा था मैंने एव खबर सुनी कि हमारे राजा पर तराई के राजा ने एक भारी सेना वे साथ चढ़ाई कर दी है और हमारे इलाके से लगभग चालीस-पचार मील दूर दोनों राजाओं के बीच घमासान की लड़ाई हो रही है। मैंन सुना था कि हमलावर राजा ज़्यादा ताक़तवर है, इससे यही अन्दाज़ होता था कि हमारा राजा हार जायेगा और हम एक नये राजा की प्रजा बन जायेंगे।

परन्तु मैं जब अपने गांव वापिस आया तो कोई ऐसी बात सुनन में नहीं आई कि किस की जीत हुई और कौन हारा। हां गांव के लोग इस बात के अवश्य इच्छुक मालूम होते थे कि हमारा राजा हार जाये। इसकी वजह इसके अलावा कुछ और न थी कि हमारा मौजूद राजा और उसके कारिन्दे बड़े ही ज़ालिम थे। वे लोगों के साथ ऐसा बुरा सुलूक करते जो शायद कोई जानवरों के साथ भी न करेगा।

मुझे अच्छी तरह याद है कि एक बार लगान की वसूली के लिए राजा के कुछ कारिन्दे हमारे गांव में आये हुए थे। बाकी छः महीने ग़रीब किसानों के किस प्रकार व्यतीत होते हैं, उन्हें किन-किन मुसीबतों और परेशानियों का सामना करना पड़ता है, इस से उन कारिन्दों को कोई मतलब नहीं था। हां जब खेती तैयार हो जाती वह लगान लेने के लिए अवश्य पहुंच जाते।

राजा के जो कारिन्दे लगान लेने के लिए गांव में आते उनके ठहरने और खाने-पीने की सारी ज़िम्मेदारी गांव के मुखिया पर होती और मुखिया न चाहते हुए भी इस ज़िम्मेदारी को क़ुबूल करता था और न केवल यही बल्कि उन लोगों की ओर से किये जाने वाले हर अत्याचार में उसे शामिल होना पड़ता था वरन् वह ख़ुद उनके ग़ुस्से

का शिकार बन जाता।

शायद ऐसी ही कोई घटना थी। एक ग़रीब किसान जिसके पास कारिन्दों का मुंह मांगा लगान अदा करने के लिए रुपए न थे, सामने एक पेड़ से रस्सी में बंधा उल्टा लटका हुआ था और एक आदमी उस पर बेरहमी के साथ कोड़े बरसा रहा था। ग़रीब किसान कुछ देर तक दर्द की ज़्यादती से तड़पता और चीखपुकार करता रहा, फिर एक बार बेहोश हो गया मगर उसके लहूलुहान शरीर पर अब भी कोड़े पड़ रहे थे।

मुखिया शायद इस ज़ालिमाना और बर्बर दृश्य को देख सकने की अपने में ताक़त न पा रहा था। उसने गिड़गिड़ा कर विनती की, "माई-बाप इसके छोटे-छोटे बच्चे हैं, इसे !" बेरहम कारिन्दों के लिए यह बेजा दख़्लअन्दाज़ी की बात थी। वे बहुत फुरती से मुखिया की ओर पलट पड़े और फिर हम सबने वह कुछ देखा जिसे सोचकर आज भी हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

बहरहाल लड़ाई की जो ख़बरें हम सुन रहे थे उसके नतीजे में नए राजा के आने के इन्तिज़ार में थे। कुछ दिनों बाद हमें मालूम हुआ कि तराई का राजा हार कर वापिस लौट गया और हम पहली ही जैसी हालत में हैं।

इसके बाद एक समय तक कोई ऐसी घटना नहीं हुई जो वास्तव में उल्लेखनीय हो। दोनों चाचा अपनी-अपनी शादी के बाद हमसे अलग घरों में रहने लगे थे। यह दोनों घर मेरे पिता जी ने ख़ास तौर से इसलिए बनवाये थे कि जब दोनों चाचा शादी के बाद अलग हों तो वे उन घरों में रह सकें।

इन दोनों की शादी के बाद मेरी शादी का समय आया, अगरचे मेरी उम्र अभी कुछ ज़्यादा नहीं थी, लेकिन इतनी भी कम नहीं थी

कि मैं यह न समझ सकूं कि शादी किस लिए की जाती है।

मेरी शादी की रस्म उन ही सारे रीति-रिवाजों के साथ अदा हुई जो बाप—दादा से चले आ रहे थे। अतः मैंने एक आज्ञाकारी पुत्र की हैसियत से हर उस बात पर अमल किया जो मेरे बड़ों की ओर से मुझसे कही गई।

यद्यपि मेरी पत्नी अपने रंग-रूप और अपने स्वभाव तथा आदतों की दृष्टि से अच्छी न थी, परन्तु मुझे केवल उसे इसलिए स्वीकार करना पड़ा कि वह मेरे पिता की मन पसन्द थी और मेरे पिता जी ने उसे इसलिए पसन्द किया था कि वह दहेज में अपने साथ बड़ा माल-दौलत लाई थी।

यदि मेरी पत्नी अपने दहेज में यह माल और सामान न लाती, तो कोई ऐसी बात भी न थी, लेकिन मेरे पिताजी का कहना था कि बढ़ती हुई दौलत को ठुकराना बेवक़ूफ़ी है। यह बात बिल्कुल सही थी कि मेरे पिता चाहे कुछ भी रहे हों मगर वह मूर्ख नहीं थे।

मेरी शादी के लगभग डेढ़ साल बाद मेरे यहां एक लड़की पैदा हुई जो रंग-रूप में अपनी मां से बहुत मिलती-जुलती थी?

मैंने इस पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया, लेकिन मैंने महसूस किया कि मेरे यहां लड़की का पैदा होना मेरे पिता के लिए खुशी का कारण नहीं हुआ और शायद यह पहला अवसर था कि मेरे पिता के दिल में अपनी बहू के लिए जो एक अत्यन्त सुखद भावना हमेशा मौजूद रहा करती थी, उसमें बड़ी हद तक कमी आ गई थी।

इस बीच एक बार फिर ऐसी ख़बरें मिलने लगीं कि तराई का राजा जो पहले पराजित होकर लौट चुका था, उसने फिर हमला कर दिया है और इस बार उसकी सेना पहले से भी अधिक संख्या में है।

ऐसी स्थिति में अब इस बात की उम्मीद करना मुनासिब ही था

कि अब हमें शीघ्र ही नये राजा और नये कर्मचारियों से वास्ता पेश आयेगा। नए राजा और कर्मचारियों का हमारे साथ क्या रवय्या होगा, इसकी कोई स्पष्ट कल्पना तो हमारे दिमाग़ों में नहीं थी, लेकिन न मालूम क्यों यह बात हम ज़रूर समझ रहे थे कि नये आने वाले बहरहाल मौजूदा लोगों से बेहतर होंगे और अब हमें छोटी–छोटी सी बातों के लिए अत्याचार व अन्याय का शिकार नहीं बनाया जायेगा।

लेकिन इस बार भी फिर वही हुआ। तराई के राजा की न केवल हार हुई, बल्कि वह लड़ाई में मारा भी गया तथा उस की बहुत-सी फ़ौज भी काम आई।

हमें जहां ये सब बातें मालूम हुईं, वहां यह भी पता चला कि इस लड़ाई में हमारे राजा की ओर से बाहर से आये हुए कुछ मुसलमानों ने भी हिस्सा लिया था और इस शर्त के साथ कि यदि वह तराई के राजा को पराजित करने में सफल हो गए, तो उन्हें अपने किसी भी मन पसन्द इलाके में रहने के लिए जगह दे दी जायेगी।

तराई का राजा अब वास्तव में पराजित हो चुका था। इसके बाद अब यह सोचना मुनासिब ही था कि मुसलमान अपने रहने के लिए हमारे इलाके ही को पसंद करेंगे।

इस अप्रिय कल्पना से हमारी पूरी बस्ती में एक तरह का आतंक फैल गया तथा किसी की समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि यदि वास्तव में यह नई मुसीबत आ पड़ी, तो फिर उन्हें क्या करना है। इस गांव में रहकर ही अत्याचार व अन्याय सहन करें या किसी दूसरी जगह पर भाग जायें।

मुसलमानों के बारे में इस प्रकार सोचना हमारे लिए अनुचित भी नहीं था। हमने अब तक मुसलमानों के बारे में जो कुछ सुना था, उसको देखते हुए हम बिल्कुल ठीक सोच रहे थे।

हमने मुसलमानों से सम्बन्धित हत्या, लूटमार तथा अन्याय व अत्याचार के बहुत से किस्से सुन रखे थे, इसलिए हम लोगों को तरह–तरह की आशंकाएं सता रही थीं। बल्कि कुछ ने तो यह निश्चय भी कर लिया था कि जैसे ही मुसलमानों ने इस बस्ती में कदम रखा, वे यहां से कहीं दूर भाग जायेंगे अलबत्ता कुछ ऐसे भी लोग थे जो मुसलमानों से बहुत अधिक भयभीत नहीं थे और वे खुद को नये हालात के हवाले करने के लिए पूरी तरह तैयार थे।

गर्मी की एक प्रातः को आकाश पर बादल छाया हुआ था और शीतल समीर की तरह हल्की-हल्की मन्द वायु चल रही थी। कुछ मुसलमानों ने हमारे गांव में प्रवेश किया। उनके चेहरों पर दाढ़ियां थीं, शरीर पर साधारण वस्त्र तथा वे बलशाली घोड़ों पर सवार थे। उन के पास कुछ हथियार और कुछ दैनिक प्रयोग का सामान था।

हम अत्यन्त भयभीत दशा में उन्हें देख रहे थे कि वे लोग सब से पहले किस चीज़ पर हमला करते हैं और गांव में क्या प्रलय मचाते हैं। मर्द औरतों से भी ज़्यादा भयभीत थे और औरतों मर्दों से ज़्यादा दुःखी दीख पड़ती थीं।

परन्तु हमने शीघ्र ही महसूस किया कि वास्तव में हमारे भय और डर की कोई बुनियाद नहीं है, सिवाय उन झूठी सच्ची कहानियों के जो हमने उन लोगों के बारे में सुन रखीं थीं।

वे लोग अत्यन्त सभ्य निकले। उन्होंने किसी के साथ न कोई दुर्व्यवहार किया, न किसी के घर-बार को लूटा और न किसी के खेत खलिहान ही को नुकसान पहुंचाया। उन्होंने बड़ी ही नर्मी के साथ में किसी से मुखिया के घर का पता मालूम किया और फिर शान्तिपूर्वक नज़रें नीची किए मुखिया के घर की ओर चल दिये।

मुखिया अपने घर पर मौजूद था। उसने अत्यन्त

उल्लासपूर्वक मुसलमानों का स्वागत किया और स्वयं को हर सेवा के लिए पेश कर दिया।

एक मुसलमान आगे बढ़ा। शायद वह बाक़ी सभी मुसलमानों का सरदार था। उसने मुखिया से कहा :

"तुम्हारे राजा के आदेशानुसार हमें इस बस्ती में जो भी जगह पसन्द आये हम उसे बिना किसी संकोच के हासिल कर सकते हैं। लेकिन हम मुसलमान हैं और मुसलमान के लिए किसी दूसरे की चीज़ ज़बरदस्ती हासिल करना हराम (मना) है। हमें अपने रहने के लिए जो भी जगह पसन्द आयेगी, हम उसका उचित मूल्य देंगे।

मुसलमानों ने शाम तक घूम फिर कर अपने लिए एक जगह पसंद कर ली। यह जगह एक ग़रीब गड़रिये की थी। उसको इस का उचित मूल्य देकर यह जगह ले ली गई।

गांव की ज़िंदगी में शायद यह पहला अवसर था कि राजा की ओर से आए हुये लोग इतने सज्जन दिखाई दिये। मगर बड़ी अजीब बात यह थी कि मुसलमानों की इस इंसाफ़ पसंदी के बावजूद हम लोग अभी तक दिल से उनसे सन्तुष्ट नहीं थे, बल्कि अब भी एक आशंका में ग्रस्त थे कि न जाने कब इन लोगों के तेवर बदलें और ये मिनट की चौथाई में पूरी बस्ती को नष्ट और तबाह करके रख दें।

यथा पूर्व हमारे दिन इसी भांति चिन्ताओं में बीतते रहे, और वास्तव में कोई ऐसी घटना नहीं घटी कि जिससे हमारी किसी भी आशंका की पुष्टि हो सकती।

मुसलमानों को अपने रिहाइशी मकानों के साथ-साथ इबादत के लिए एक मस्जिद की भी ज़रूरत थी, उन्होंने अपनी संयुक्त भूमि को आपस में इस तरह बांटा कि काफ़ी ज़मीन बाकी बच गयी। इस ज़मीन के कुछ हिस्से में मस्जिद की बुनियाद डाली और अपने घरों

के साथ-साथ मस्जिद का भी निर्माण कर लिया।

निर्माण का सारा काम मुसलमानों ने अपने हाथों से किया। जबकि हमारे लिए इस बात की संभावना थी गांव की परम्परा के अनुसार मुसलमान भी अपने घर और मस्जिद बनाने के लिए छोटे लोगों को बेगार में पकड़ेंगे। मगर उन्होंने बस्ती के किसी भी आदमी को भी बेगार में नहीं बुलाया। यहां तक कि जब मुखिया ने उनके सामने यह प्रस्ताव रखा कि जब बस्ती में काम करने वाले मिल सकते हैं, तो फिर आप लोगों को खुद मेहनत करने की क्या ज़रूरत है। आप केवल आदेश दे दें, आप का सारा काम आपकी इच्छानुसार हो जायेगा।

परन्तु मुसलमानों ने मुखिया के इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया, और बड़े साफ़ तौर पर कहा, "किसी से बेगार लेना एक प्रकार का अत्याचार है और ईश्वर अत्याचार करने वालों को पसन्द नहीं करता है।"

हमारे गांव की प्राचीन परम्परा को मुसलमानों ने अत्याचार कह कर याद किया था। अन्य लोगों ने इस बारे में क्या सोचा और उन छोटे लोगों ने क्या सोचा जो अब तक ज़ुल्म का शिकार होते रहे थे, मुझे इस बारे में कुछ अधिक जानकारी नहीं। फिर भी मेरे पिता जी को यह अच्छा नहीं लगा और शायद उन्हें किसी ऐसी बात को अच्छा समझना भी नहीं चाहिए था, इसलिए कि हमारी ख़ानदानी इज़्ज़त, बड़ाई और दौलतमंदी की बुनियाद इसी पर थी कि हम आम लोगों से जितना भी कुछ प्राप्त कर सकें उतना ही हमारे तथा हमारे ख़ानदान के लिए बेहतर था।

मुसलमानों के रवय्ये से नीची जाति के लोगों में जो एक तरह की तब्दीली का एहसास पैदा हो रहा था वह हमारे लिए दुःखद तो

था ही, परन्तु मुसलमानों के इस व्यवहार ने तमाम बड़े लोगों को एक बहुत बड़ी दुविधा में डाल दिया था। मिसाल के तौर पर मुसलमानों का यह बर्ताव जो उन्होंने गांव के एक अत्यन्त दीन-हीन व्यक्ति रामू के साथ किया।

रामू छोटी जाति का एक बहुत ग़रीब आदमी था। उसके बारे में गांव में कभी इस तरह नहीं सोचा गया था कि वह भी एक इंसान है, उसकी भी कुछ भावनाएं हैं, उसे भी सर्दी-गर्मी तथा अच्छी—बुरी बातों का एहसास होता होगा। बेगार के लिए सब से पहले उसी का नाम आता था और शायद वह स्वयं भी अपने आपको बड़े लोगों की सेवा के लिए अर्पित समझता था।

मुसलमानों ने सबसे पहले उसी को चुना। वे एक दिन सवेरे ही उसके यहां जा पहुंचे। वह किसी बड़े आदमी के खेतों पर जाने की तैयारी कर रहा था।

मुसलमानों ने पहले उसका, उसके बच्चों और उसके झोंपड़े जैसे घर का जायज़ा लिया। रामू की उम्र अभी कुछ अधिक नहीं थी। वह उस समय लगभग ३०—३२ साल का रहा होगा, परंतु अपने स्वास्थ्य की दृष्टि से वह एक अधेड़ आयु व्यक्ति से कम नज़र नहीं आ रहा था। कपड़े के नाम पर उसके शरीर पर मटियाले रंग की एक बंडी और लंगोटी थी तथा वह भी जगह-जगह से फटी हुई थी।

ऐसी ही दशा रामू के छोटे—छोटे बच्चों और घर की थी। और उन बच्चों में अधिकांश बच्चे ऐसे थे जिनके नन्हें-मुन्ने शरीर कपड़े की एक धज्जी से भी वंचित थे।

मुसलमानों ने बताया

तुम भी सारे इंसानों की तरह के इंसान हो। तुम्हें खुद अपने आपको दूसरे इंसानों के मुकाबले में इतना अधिक हीन और तुच्छ नहीं समझना चाहिए। तुम गांव में अनेक लोगों की तुलना में निर्धन ज़रूर हो, परन्तु इसका यह मतलब कदापि नहीं है कि जो लोग तुम से धन सम्पत्ति तथा शक्ति में अधिक हैं, वे तुम से एक जानवर की तरह काम लें।

'अल्लाह ने सारे इंसानों को एक मर्द और एक औरत से पैदा किया है। अतः न किसी धनी व्यक्ति को किसी निर्धन पर श्रेष्ठता प्राप्त है न किसी ताक़तवर को कमज़ोर पर तथा न किसी गोरे को काले पर कोई बड़ाई हासिल है। हां वे लोग जो सदाचारी और नेक हैं ज़ुल्म करने से बचते हैं न्यायप्रिय हैं, अपने भाइयों के साथ अच्छा व्यवहार करते हैं। किसी की जान, धन सम्पत्ति से अनुचित लाभ नहीं उठाते। ऐसे ही लोग वास्तव में आदर के योग्य है और अल्लाह भी इन्हें पसन्द करता है।'

मुसलमानों के इस विचित्र दृष्टिकोण तथा बर्ताव ने हमारे गांव में एक नया माहौल पैदा कर दिया।

वे लोग जो नए माहौल को अपने लिए अनुकूल समझ रहे थे, उनके बारे में सोचना ही बेकार है। हां वे लोग जिन्हें इस तब्दीली में एक बहुत बड़ा ख़तरा महसूस हो रहा था, स्वयं उन्हें भी यह साहस नहीं था कि वे खुलकर मुसलमानों या उन बातों का विरोध करते, जिन्हें मुसलमान बड़ी शीघ्रता से गांव के जीवन में फैला रहे थे।

मुझे अच्छी तरह याद है। एक दिन कुछ मुसलमान मेरे पिता के
ास आये और उनसे कहने लगे--

'हम आपके सामने इस्लाम का पैग़ाम रखना चाहते हैं, जो एक
र्वोत्तम तथा **पूर्ण-जीवन** व्यवस्था है। इसके मौलिक नियम ये हैं कि
म ईश्वर को एक मानें, किसी को उसका साझी न ठहरायें और
वल उसी की उपासना करें। नमाज़ क़ायम करें, ज़कात देते रहें,
त्कर्म करें तथा दूसरों को भी सच्चाई और अच्छे कर्म की ओर
लायें। स्वयं बुराइयों से बचें तथा दूसरों को बुराइयों से रोकें।
ााय के गवाह बनें और उस अन्तिम न्याय दिवस पर विश्वास रखें
ास दिन हमारे अच्छे तथा बुरे कर्मों का बंदला दिया जायेगा।'

मेरे पिता ऐसे सारे मामलों में बड़ी सावधानी का परिचय दिया
रते थे। आज भी उन्होंने मुसलमानों की हर बात को ध्यानपूर्वक
ना और अन्त में उन्हें इस बात का विश्वास दिलाया कि मैं इस
ारे में अवश्य सोच-विचार करूंगा और यदि इस्लाम वास्तव में मेरे
र्म की तुलना में बेहतर सिद्ध हुआ तो मैं उस को ग्रहण कर लूंगा।

मुसलमानों ने मेरे पिता को यह भी बताया कि 'इस्लाम किसी
कार के अत्याचार और ज़ोर ज़बरदस्ती को सहन नहीं करता।
हां तक कि धर्म के प्रचार के सम्बन्ध में भी बल का प्रयोग करने
ी इजाज़त नहीं है। जिस का मन चाहे माने और जिस का मन न
ाहे अस्वीकार कर दे। अतः हम आप पर किसी प्रकार का दबाव
ले बिना आप से यह निवेदन करते हैं कि यदि आप इस्लाम को
ास्तव में एक उत्कृष्ट तथा सम्पूर्ण-जीवन व्यवस्था समझते हैं, तो
ार इस पर ईमान ले आइए तथा अल्लाह के सदाचारी तथा
ाज्ञाकारी बन्दों में शामिल हो जाइए।'

मेरे पिता की इस बात से बड़ी ढाढस बंधी कि मुसलमान अपने

दीन-धर्म के प्रचार के लिए किसी प्रकार के दमन, हिंसा और अत्याचार को उचित नहीं समझते हैं। उन के कथनानुसार उन का काम केवल यह है कि इस्लाम के संदेश को सच्चाई के साथ दूसरों तक पहुंचा दें। इसके बाद वे इस बात पर विश्वास रखते हैं कि सत्य कभी झुठलाया नहीं जाता। यह दूसरी बात है कि कोई दुर्भाग्य के कारण इससे वंचित रह गया।

मेरे पिता ने अपनी बात को और अधिक स्पष्ट शब्दों में दोहराया। परन्तु वास्तव में उन का दिल मुसलमानों की ओर से साफ़ नहीं था।

मुसलमानों के वापस लौटने के बाद मैंने अपने पिता से पूछा, 'इन लोगों के धर्म के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं?'

'सच तो यह है' मेरे पिता ने अत्यन्त रहस्यपूर्ण अन्दाज़ में मुझे बताया, 'ये लोग जिस धर्म का निमंत्रण दे रहे हैं, इस में अनेक खूबियां हैं और हो सकता है, इस इलाके के लोगों का भावी धर्म यही हो।'

'फिर आप इस धर्म को स्वीकार क्यों नहीं कर लेते?'

"मैं इस धर्म पर निस्संदेह ईमान ले आता, लेकिन इस इलाके में मेरी हैसियत एक धार्मिक पेशवा की है। मुझे लोग आदर और सम्मान की नज़र से देखते हैं। मेरे और मेरे कुटुम्ब के लिए अपनी जान और माल की भेंट प्रस्तुत करते हैं। ऐसी दशा में मेरे लिए सम्भव नहीं है कि मैं कोई अन्य धर्म ग्रहण कर लूं।"

मेरे पिता के सोचने का यह अन्दाज़ अपने स्थान पर बिल्कुल स्वाभाविक था। वे जिन धारणाओं और उसूलों से सम्बद्ध थे, उनमें इस बात की गुंजाइश ही न थी कि वे इसके अलावा कुछ और भी सोच सकें।

मुसलमानों ने व्यक्तिगत रूप से इस्लाम का पैग़ाम पहुंचाने के साथ-साथ अब सभाएं भी करनी शुरू कर दीं। ये सभायें सप्ताह में एक या दो बार अवश्य ही आयोजित होतीं।

इन सभाओं में गांव के लोग बड़ी रूचि के साथ सम्मिलित होते। लेकिन उन शरीक होने वाले लोगों में अधिकांश संख्या उन्हीं लोगों की हुआ करती, जिनका सम्बन्ध निम्न वर्ग अथवा छोटी जाति से था।

इन सभाओं में मुसलमान जो भाषण देते, वे बहुधा इस प्रकार के होतें : अल्लाह एक है। मुहम्मद (सल्ल०) अल्लाह के रसूल हैं। शिर्क (अनेकेश्वरवाद) सबसे बड़ा गुनाह है। दूसरों के प्रति सदैव अच्छा व्यवहार करो। सदा न्याय पर क़ायम रहो। किसी के साथ अत्याचार न करो। व्यभिचार तथा चोरी बहुत बड़े गुनाह हैं और एक दिन ऐसा अवश्य आएगा जब हमारे सारे कर्मों का बदला चुकाया जाएगा आदि-आदि।

मुसलमान ये सारी बातें न केवल दूसरों को बताते, बल्कि उनका अपना अमल भी उन्हीं के मुताबिक़ होता।

एक व्यापारी था, जिसने कुछ सप्ताह पूर्व गांव के अनेक लोगों के साथ इस्लाम धर्म ग्रहण किया था। उसके विरुद्ध मुसलमानों के एक मुखिया से एक किसान ने यह शिकायत की कि "उसने मुझसे उधार लेकर एक बैल खरीदा था जो इसके यहां आने के कुछ दिन बाद मर गया। मैंने जिस समय यह बैल बेचा था बिल्कुल ठीक था। उसे किसी तरह का रोग नहीं था, परन्तु वह मुझे रुपए देने से इन्कार कर रहा है अतः मुझे मेरे बैल का मूल्य दिलाया जाए।"

सरदार ने तुरन्त मुसलमान व्यापारी को बुलवाया और उसके सामने बैल वाले की बात दोहराकर पुष्टि चाही। बात ठीक थी।

मुसलमान व्यापारी ने उसे स्वीकार किया।

सरदार ने आदेश दिया कि बैल का मूल्य जो दोनों के बीच त हुआ था, तुरन्त दिया जाएगा।

स्पष्ट है कि अब मुसलमान व्यापारी के सामने कोई रास्ता था। उसने बैल का पूरा मूल्य प्रधान की मौजूदगी में अदा कर दि और आगे ऐसा न करने का वचन दिया।

इसी तरह एक बार ऐसा हुआ कि रबी (वसन्त) की फसल क रही थी और गांव के लगभग सभी लोग अपनी खेती काटने में ल थे। मुसलमान किसान भी अपनी खेती काट रहे थे। इसी बी अब्दुल्लाह नामक एक नवमुस्लिम जो एक ऊंचे परिवार से सम्बन रखता था और जिस को गांव का प्रत्येक छोटा-बड़ा मर्द-और इज़्ज़त की नज़र से देखता था, उसने न जाने किस बात पर गुस्स होकर एक निर्धन नव मुस्लिम नूरा को एक ज़ोर का थप्पड़ मा दिया। नूरा ने इस अत्याचार के विरुद्ध तुरन्त प्रधान से शिकाय कर दी। प्रधान ने दोनों को अपने पास बुलाया और सही बात मालू की। नूरा के साथ वास्तव में अत्याचार हुआ था।

प्रधान ने नूरा से कहा, वह अब्दुल्लाह के इतने ही ज़ोर से ए थप्पड़ लगा सकता है किन्तु यदि वह चाहे तो माफ़ भी कर सकता और यह अधिक अच्छा है।

इस फ़ैसले के बाद अब्दुल्लाह ने नूरा से अपने अत्याचार लिए माफ़ी मांगी और उसने उसे खुशी के साथ माफ़ कर दिया

अब्दुल्लाह जैसे सम्मानित व्यक्ति के लिए यह बात वास्तव बहुत ही मुश्किल थी कि वह नूरा से माफ़ी मांगे या उससे बदले एक थप्पड़ खाए। उसने ऐसा केवल इसलिए किया, ताकि वह परलोक में नूरा का बदला चुकाने से बच जाए।

यह और इन जैसी अनेक बातें जो मुसलमानों की ओर से दिन-प्रतिदिन सामने आती थीं, हम लोगों के अन्दर सोच-विचार की भावना पैदा करने के बजाए ईर्ष्या व द्वैष की भावना उत्पन्न करतीं।

यह तो स्पष्ट था कि हम निजी रूप से मुसलमानों से कितनी ही ईर्ष्या करते, परन्तु इस स्थिति में बिल्कुल नहीं थे कि उनका खुल कर विरोध कर सकें। हां ढके-छिपे हम मुसलमानों के बारे में किसी तरह का इज़हार (अभिव्यक्ति) कर सकते थे और वह हम बराबर कर रहे थे।

कुछ उच्च जाति के लोगों ने मुसलमानों के विरुद्ध कुछ नव-जवानों का गुप्त दल बना लिया था, जिसका काम केवल यही था कि वह गांव के लोगों को मुसलमान होने से रोकें तथा जो मुसलमान हो चुके हैं, उनसे बचने की कोशिश करें।

इस गुप्त दल में दस आदमी थे इन दस व्यक्तियों में आठ नव जवान और दो बूढ़े व्यक्ति शामिल थे।

इस दल ने अब तक बहुत से काम किये थे, लेकिन उनकी इच्छानुसार काम अब भी नहीं हो पा रहा था। अतः एक सभा में यह तय किया गया कि तीन ऐसे नव जवानों की एक कमेटी बनाई जाए जो ऊपरी तौर से तो मुसलमान हो जाए परन्तु वास्तव में उस का काम यह होगा कि वह मुसलमानों की अन्दरूनी बुराइयों की तलाश करे। इस प्रकार गांव के लोगों में मुसलमानों के बारे में जो बहुत ज्यादा ख़ुशफ़हमी पैदा हो गई है उसमें कमी आ जाएगी।

एक दिन इन तीनों नवजवानों ने मुसलमानों में पहुंचकर इस्लाम ग्रहण कर लिया। अब वे प्रत्यक्ष रूप से मुसलमान थे परन्तु वास्तव में वे अपने पैत्रिक धर्म ही पर जमे हुए थे।

शुरू में गुप्त दल के इन तीनों नवजवानों ने अपने मक़सद और

अपनी ज़िम्मेदारियों के सिलसिले में बड़ी सरगर्मी दिखाई, मगर फिर धीरे-धीरे उनकी विरोधी भावनायें ठंडी पड़ गईं। और ऐसा महसूस होने लगा कि उनका मानसिक झुकाव मुसलमानों की ओर बढ़ता जा रहा है।

एक बार मेरे पिता ने उनमें से एक नौजवान से मालूम किया ''क्या तुम भी मुसलमानों से प्रभावित हो गए और अपनी सर्वोच्च मान्यताओं को त्याग दिया?

जी हां! नव जवान ने बड़ी सादगी और विश्वास के साथ कहा।

''मैं नहीं समझता कि हम मुसलमानों का किस कारणवश विरोध करें। ये नेक और भले लोग जिन बेहतरीन विचारों और उच्च आदर्शों को लेकर चल रहे हैं वे ऐसे हैं कि हम सब लोग जो वास्तव में सच्चाई के इच्छुक हैं तथा अपने इस अस्थाई जीवन को सीधे और सच्चे तरीक़े से व्यतीत करना चाहते हैं इन्हें समझें और निःसंकोच स्वीकार कर लें।''

फिर उस नवजवान ने एक आंखों देखी घटना का वर्णन किया

''मैं एक दिन सवेरे सरदार के पास मस्जिद में बैठा हुआ था एक बूढ़ा बड़ी दयनीय हालत में सरदार के पास आया और कहने लगा, ''हे आदरणीय सरदार! मैं आपकी सेवा में केवल इसलिए उपस्थित हुआ हूं कि आपको बता दूं कि कल खेत पर काम करते समय आपने मुझे ज़्यादा से ज़्यादा काम की ओर शौक़ दिलाने के लिये मेरी पीठ को थपथपाया था, इससे मेरी पीठ में दर्द हो गया और उस दर्द के कारण मैं रात भर बेचैन रहा। मैं चाहता हूं कि इस मामूली सी तकलीफ़ के लिए परमेश्वर आपकी आख़िरत में पकड़ न करे।

सरदार ने उस ग़रीब बूढ़े की पूरी बात ध्यान पूर्वक सुनी और फिर तुरन्त खड़े होकर अपनी पीठ खोल दी, "तुम अपना बदला ले लो।"

मस्जिद में बहुत से लोग इकट्ठे थे और उन सबके बीच मुसलमानों का सरदार अपनी कमर खोले बूढ़े आदमी के सामने खड़ा था कि वह उससे अपना बदला ले ले।

सम्भव है आप सोच रहे हों कि मैंने मुसलमानों के बारे में अपने व्यक्तिगत विचारों की अब तक कोई अभिव्यक्ति नहीं की है। मुसलमानों के प्रति मेरे मन में अपने पिता और दूसरी ऊंची जाति के लोगों की तरह कोई विरोधी भावना तो थी नहीं, पर यह भी नहीं कहा जा सकता कि मैं अपनी वर्तमान स्थिति में उनसे सहमत था और उनके प्रति अपने अन्दर कोई सद्भावना रखता था।

हां इतनी बात ज़रूर थी कि मुसलमान जब कोई धार्मिक सभा करते और मुझे मौका मिलता तो मैं अपने पिता जी से छुप कर उस सभा में ज़रूर जाता।

ये सभाएं आमतौर से मस्जिद के निकट उस छोटे से मैदान में होतीं जो ख़ास तौर से इसी मक़सद के लिए मस्जिद के निर्माण के समय छोड़ा गया था। इन सभाओं में किसी ख़ास तरह का आयोजन नहीं किया जाता केवल दिन में किसी समय गांव के सारे लोगों तक यह सूचना पहुंचा दी जाती कि आज रात मस्जिद के सामने मैदान में एक सभा है, कृपया आप उसमें पधारें।

निश्चित समय से कुछ पहले ही लोग आने लगते तथा बिना किसी देख-रेख के क्रमानुसार बैठते जाते। इस प्रकार क्रमशः पंक्तियां सी बन जातीं। कभी कोई बाद का आने वाला आगे बैठने की कोशिश नहीं करता। जिसको जहां भी स्थान मिलता वह वहीं

पर अत्यन्त शान्ति पूर्वक बैठ जाता। इस तरह भारी संख्या में लोग इकट्ठे हो जाते, परन्तु शोर-गुल या किसी तरह के हंगामे का नाम व निशान तक नहीं होता। हर व्यक्ति अपने तौर पर इस ज़िम्मेदारी को निभाता कि वह खामोशी और शान्ति के साथ अपने स्थान पर बैठे। ठीक समय पर सभा की कार्यवाही आरम्भ हो जाती। सब से पहले पवित्र कुरआन की कुछ आयतें पढ़ी जातीं, फिर इन सब आयतों का अनुवाद पेश किया जाता तथा इसके बाद भाषण और तक़रीरों का सिलसिला होता। इस सारी कार्यवाही में एक डेढ़ घंटे से अधिक समय नहीं लगता। कार्यक्रम समाप्त हो जाने पर सब लोग अपने-अपने घरों के लिए रवाना हो जाते। हां यदि किसी को कुछ मालूम करना होता तो वह रुक जाता और किसी मुसलमान से अपनी तसल्ली कर लेता। मैंने अब तक मुसलमानों की ज़ितनी भी सभाओं में भाग लिया था, मैं नहीं कह सकता कि उन्होंने मुझे प्रभावित न किया हो। मैं प्रत्येक सभा से कोई न कोई प्रेरणा और असर अवश्य लेकर उठता। मेरे लिए वास्तव में सबसे अधिक रुचि का कारण बुज़ुर्गों के जीवन की वे घटनाएं होती, जिनका तक़रीरों में उल्लेख किया जाता था।

एक बार मैंने यह क़िस्सा सुना कि मुसलमानों के दूसरे ख़लीफ़ा हज़रत उमर (रजि०) एक अवसर पर, जबकि मुसलमान ईरानियों से एक निर्णयकारी युद्ध लड़ रहे थे तथा ईरानियों की ज़बरदस्त सेना के मुक़ाबले मुसलमानों की संख्या बहुत थोड़ी थी, मगर उनको अल्लाह और उनके रसूल पर ईमान और दृढ़ विश्वास होने के कारण इस्लाम की सफलता का पूर्ण विश्वास था, युद्ध की ओर से चिंतित थे।

जब से युद्ध आरम्भ हुआ था आप रोज़ सुबह की नमाज़ से फ़ारिग़ होकर ईरान से मदीना आने वाले मार्ग पर बैठ कर हज़रत

अद बिन वक़्क़ास (रज़ि०) के सन्देशवाहक की बाट देखा करते।

जब एक दिन आप नगर से बाहर निकले तो सामने से ऊंट पर वार एक व्यक्ति को आते देखा। मालूम हुआ कि हज़रत स'अद का न्देशवाहक है। आप उस व्यक्ति के साथ चलने लगे। उसने ताया कि ख़ुदा ने मुसलमानों को सफलता प्रदान की है। आप ऊंट साथ-साथ दौड़ते जाते थे और हालात मालूम करते जाते थे। ऊंट ा सवार नगर में दाख़िल हुआ, तो देखा जो सामने से आता है ापको अमीरुल मोमिनीन कह कर याद कर रहा है। वह सवार बरा गया। मगर आपने कहा—"कुछ चिन्ता नहीं, तुम हालात ुनाते चलो।"

फिर एक बार यह क़िस्सा सुना,

मुहम्मद बिन अब्दुल बाक़ी एक बहुत बड़े विद्वान थे। मक्का ागर में रहते थे। अति **निर्धनता** का जीवन व्यतीत कर रहे थे। कई-कई दिन उपवास में गुज़र जाते थे। एक दिन भूख से व्याकुल ोकर किसी रास्ते पर इस आशा से जा बैठे कि खाने के लिए कोई ास्ता निकल आये। संयोग से उन्हें वहां एक थैली दिखाई दी। उसे ेकर घर आए। उस थैली में एक क़ीमती हार था। उन्होंने उस हार को उसी तरह थैली में बांधकर रख दिया। दूसरे दिन एक एलान ुना, "कपड़े की एक थैली जिसमें एक क़ीमती हार रखा हुआ है, ो गई है, जो उसे पहुंचा देगा, उसे पांच सौ दिरहम इनाम में दिए ायेंगे।"

मुहम्मद बिन अब्दुल बाक़ी थैली अपने साथ लेकर तुरन्त बाहर आए और एलान करने वाले से थैली का रंग रूप आदि मालूम किया और जब उन्हें विश्वास हो गया कि थैली इसी व्यक्ति की है, तो उसी को सौंप दी। एलान करने वाले ने वादे के मुताबिक़ पांच सौ देरहम पेश किये, शेख़ ने उसे रोकते हुए कहा :—

"यह मेरा कर्तव्य था, जिसका मैंने पालन किया है। मेरे लिरं यह क्या कम है कि तुम्हें तुम्हारी खोई हुई वस्तु मिल गई औ तुम्हारा दिल खुशी और हर्ष से भर गया।"

बात आई गई हो गई।

कुछ वर्ष बाद एक बार मुहम्मद बिन अब्दुल बाकी समुद्री यात्र पर थे। मार्ग में जहाज़ एक तूफ़ान में तबाह हो गया, लेकिन संयोग-वश शेख लकड़ी के एक तख्ते पर आ पड़े और समुद्र की विशालता में ज़िन्दगी और मौत की कशमकश में तथा भूख और प्यास से निढाल तैरते हुये एक दिन किसी द्वीप के किनारे आ लगे।

तट पर आये तो कमज़ोरी की वजह से बेताब थे इधर-उधर देखा, कुछ ही दूरी पर एक आबादी नज़र आई। निकट पहुंचे तो एक मस्जिद भी दिखाई दी। इत्मीनान हुआ कि मुसलमानों की बस्ती है। यहां पहुंच कर लोगों को अपने जहाज के विनाश की घटना सुनाई। बस्ती के लोग शेख की बात-चीत से प्रभावित हुए। कुछ दिन बाद उनके ज्ञान एवं श्रेष्ठता के गुण प्रकट हुए तो लोग बहुत प्रसन्न हुए और शेख को स्थाई तौर से रहने के लिए राज़ी कर लिया।

जब शेख स्थाई तौर पर वहां रहने लगे तो लोगों ने उन को शादी कर लेने का मशविरा दिया, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। शादी एक यतीम लड़की से हुई। यह लड़की जब उनकी बीवी बन कर आई तो यह देख कर उनके अचरज एवं आश्चर्य की कोई सीमा न रही कि लड़की अपने गले में वही हार पहने हुए थी जो उन्हें एक दिन मक्का नगर में एक मार्ग पर पड़ा हुआ मिला था।

शेख ने अपनी बीवी से पूछा, "तुम्हारे पास यह हार कहां से आया?"

बीवी ने जवाब देते हुए कहा,

"कुछ वर्ष हुय मेरे अब्बा हज के लिये गये थे, तो वहां से यह हार खरीदा था। उन्होंने यह भी बताया था कि एक दिन हार खो गया था। खोज करने पर एक व्यक्ति ने लाकर मेरे सुपुर्द किया। मेरे अब्बा उस व्यक्ति की ईमानदारी और सच्चाई की बड़ी प्रशंसा करते थे तथा कहा करते थे कि यदि वह मुझे मिल जाता, तो तुमसे उसका विवाह कर देता।"

इस पर शेख मुहम्मद अब्दुल बिन बाक़ी को जो हर्ष और प्रसन्नता हासिल हुई वह शब्दों में बयान नहीं हो सकती।

फिर एक दिन मैंने यह सुनाः–

एक बार हज़रत शेख सादी नगर की एक बड़ी मस्जिद में अपने कुछ शांगिर्दों को पढ़ा रहे थे।

इस बीच वहां का राजकुमार जिसको राग-रंग और शराब पीने का बहुत चाव था और जो अधिकतर शराब के नशे में मस्त रहा करता था, अपने कुछ मित्रों के साथ मस्जिद की ओर आया। शेख़ सादी के किसी शागिर्द की जब राजकुमार पर नज़र पड़ी तो उसने शेख़ साहब का ध्यान इस ओर कराया और पूछा-

"इस बारे में आपका क्या विचार है?"

शेख साहब ने राजकुमार की यह दुर्दशा देखी, तो किसी तरह की बद्दुआ देने अथवा बुरा-भला कहने के बजाए अल्लाह तआला से उसके नेक और भला आदमी बनने की दुआ की।

राजकुमार के दो साथी जो इस खोज में इस ओर आए थे कि मालूम करें कि ये कौन लोग हैं और इस समय यहां क्या कर रहे हैं। उन्होंने अपने राजकुमार के बारे में शेख साहब का यह रवैया देखा तो बहुत आश्चर्यचकित हुए और फिर सारा क़िस्सा राजकुमार को कह सुनाया। राजकुमार पर भी शेख साहब के इस भले सुलूक का

बहुत अच्छा प्रभाव हुआ। वह तुरन्त शेख साहब की सेवा में पहुंचा और उनसे इस अच्छे बर्ताव के बारे में पूछा।

आपने उत्तर में कहा–

"हे राजकुमार! तुम्हारी इस भरपूर जवानी, स्वस्थ और सुन्दर शरीर को देखकर मेरा मन नहीं चाहा कि यह जहन्नम की आग का ईंधन बने। इसीलिए मैंने अल्लाह तआला से तुम्हारे हित में दुआ की।"

राजकुमार तुरन्त अपने महल वापस चला गया। इसके बाद उसने अगले दिन शेख साहब को अपने महल में बुलाया और उनका स्वागत करते हुए कहा–

"आप तो मुझे जहन्नम की आग से बचाने के लिए दुआ मांगें और मैं स्वयं को उस आग में ढकेलूं। अब ऐसा नहीं होगा। मैं इसी समय से सारी बुराइयों से तौबा करता हूं।"

और फिर राजकुमार ने शराब के सारे बर्तन तथा राग-रंग का सारा सामान महल के बाहर फेंक दिया।

बादशाह को जब इस सम्बन्ध में पूरी जानकारी हुई तो उसे भी बड़ा अचरज हुआ और उसने शेख सादी साहब को तुरन्त अपनी सेवा में तलब किया।

बादशाह ने कहा–

मैंने इस राजकुमार को सीधे रास्ते पर लाने के लिये हर सम्भव यत्न कर लिया था। यहां तक कि उसको कठोर दंड भी दिये, परन्तु धीरे-धीरे उसकी बुराइयां बढ़ती ही गई और अब मैं इससे बिल्कुल निराश हो चुका था।"

शेख सादी ने बताया–

"राजकुमार के सुधार के बारे में आपने जो नीति अपनाई वह आपके लिए उचित थी। वास्तव में आपको ऐसा ही करना चाहिए था, किन्तु मैं एक कमज़ोर बूढ़ा व्यक्ति हूं। मेरे बस में यही था कि मैं अपने पालनहार प्रभु से राजकुमार के लिए सदाचारी और भला इन्सान बनाने के लिए दुआ मांगूं और मैंने ऐसा ही किया।"

यह और इन जैसी अनेक घटनाएं जिन्हें मैं सभाओं और सम्मेलनों में भाषण और व्याख्यानों में सुना करता था मुझे अत्यन्त प्रभावित करतीं, परन्तु इन सारी घटनाओं का प्रभाव उस समय और भी बढ़ जाता जब मैं इन घटनाओं को व्यावहारिक रूप में अपने गांव के मुसलमानों में देखा करता।

हर मुसलमान को दिन और रात में पांच बार नमाज़ पढ़ना लाज़िमी था और मुसलमान आमतौर से नमाज़ें मस्जिद में इकट्ठे होकर पढ़ा करते थे। नमाज़ का समय हो चुका है। इसके लिए एक व्यक्ति ऊंची आवाज़ से अज़ान दिया करता था। यह व्यक्ति जो अक्सर पांचों वक़्त की अज़ान दिया करता था और वास्तव में उसकी आवाज़ अच्छी तथा ऊंची थी, मुसलमानों के गांव में आने से पहले अत्यन्त दीन-हीन व्यक्ति समझा जाता था। यह व्यक्ति अपनी जाति की दृष्टि से भी ऊंचा न था, लेकिन मुसलमानों ने उसे इतनी इज़्ज़त दी थी कि वह मस्जिद में खड़े होकर पांचों वक़्त अज़ान दिया करता था।

इससे भी अधिक गांव के लोग इस बात पर हैरान थे कि तुच्छ कहार जो हमेशा नफ़रत की नज़र से देखा गया था। जिसके जीवन का अधिकांश भाग दूसरों की सेवा करने तथा बुरा-भला सुनने में बीता था, अब मुसलमानों में एक महत्वपूर्ण व्यक्ति था। सरदार उसे अपने साथ रखता था। अनेक मामलों में उससे राय लेता तथा

उसको हमेशा अपने समान समझता।

एक बार जबकि धान की फसल काटी जा चुकी थी और धान की पूलियां इकट्ठी करके खलिहान में लाई जा रहीं थीं, मुखिया और छोटा कहार, धान की ढुलाई का काम एक साथ कर रहे थे। एक बार एक बड़ी–सी गठरी बांधकर सरदार कहार के सिर पर रखता और वह उसे खलिहान में पहुंचाता। दूसरी बार सरदार गठरी अपने सिर पर रखता। शाम तक धानों की पूलियां खलिहान में आ गयीं।

शुरू में ऐसी सारी घटनाएं हमारे लिए बहुत ज़्यादा हैरत का कारण होती थीं और हम उन पर घंटों सोच–विचार करते थे। ये कैसे लोग हैं? यह इस बात पर शर्म महसूस नहीं करते कि नीची जाति के लोग भी उनकी बराबरी करते हैं, ये दूसरों की ग़लतियों को फ़ौरन ही कैसे माफ़ कर देते हैं? इन लोगों को हर मामले में आख़िरत का क्यों ध्यान रहता है? वह आख़िरत क्या चीज़ है, जिससे ये लोग इतना डरते हैं? लेकिन फिर धीरे-धीरे हम उन सारी बातों के आदी होते गए और मुसलमानों की बहुत-सी बातें हमारी समझ में आने लगीं।

सुलेमान मुसलमान होने से पहले भी कपड़े का व्यापार करता था और अब भी यही काम कर रहा था। मगर जब और अब में अत्यधिक अन्तर पैदा हो चुका था। पहले वह जितना चाहता अपने कपड़े पर मुनाफ़ा प्राप्त करता और उस पर कोई पाबन्दी भी न थी, लेकिन अब तो उसकी हालत ही बदल गई थी। अगरचे कोई ज़ाहिरी तौर से पाबन्दी अब भी उस पर नहीं थी कि उसे अपने कपड़े पर कितना लाभ हासिल करना चाहिए, मगर अब वह बहुत ही उचित दामों पर अपना कपड़ा बेचा करता था और ख़रीदते समय भी वह इसी सावधानी से काम लेता था।

एक दिन सुलेमान के पास एक बूढ़ी औरत कपड़े का एक टुकड़ा

लेकर आई और कहने लगी–

"मेरे बेटे ने यह कपड़ा मेरे लिये शहर से भेजा है, लेकिन मैं एक मजबूरी की वजह से उसे बेचना चाहती हूं। अगर तुम खरीद लो तो मेरे ऊपर बड़ा उपकार करोगे।"

सुलेमान ने कपड़े के पारचे को उलट–पुलट कर देखा और फिर बूढ़ी औरत से उसकी क़ीमत मालूम की।

बूढ़ी औरत को शायद कपड़े की सही क़ीमत मालूम नहीं थी उसने बहुत कम दाम मांगे।

सुलेमान ने बूढ़ी औरत की ओर देखा और बहुत ही नर्म अन्दाज़ से कहा, "अम्मा! आप इसका बहुत कम मूल्य मांग रही हैं और मेरे लिए यह उचित नहीं है कि आपकी बे-ख़बरी से लाभ उठा कर आप का माल सस्ते दामों में ख़रीद लूं।"

बूढ़ी औरत ने डरते-डरते कपड़े की थोड़ी क़ीमत और बढ़ा दी लेकिन कपड़े के उचित दाम उसने अब भी नहीं मांगे थे।

सुलेमान ने बूढ़ी औरत को फिर समझाया।

"कपड़े की सही क़ीमत अब भी नहीं है। शायद आपको इसकी क़ीमत नहीं मालूम है। अतः अब आप ऐसा कीजिए कि अपने साथ किसी ऐसे व्यक्ति को लायें जो इसका मूल्य जानता हो, मैं यह कपड़ा अब उसी समय खरीदूंगा।"

मुसलमान साल भर में आमतौर से दो त्यौहार मनाते थे। एक बार रमज़ान के रोज़ों के बाद 'ईदुल फित्र' के अवसर पर तथा दूसरे 'ईदुल अज़हा' के मौक़ों पर।

'ईदुल फ़ित्र' का त्यौहार जिसे मुसलमान छोटी ईद के नाम से भी याद करते थे, एक महीने के लगातार रोज़े (उपवास) रखने के बाद मनाते थे।

नमाज़ की तरह रोज़ा भी हर मुसलमान के लिये रखना ज़रूरी था और वास्तव में वे इस कर्तव्य को भी बहुत ही अच्छे ढंग से निभाते थे।

रमज़ान का महीना हर मुसलमान के लिए एक अद्भुत उल्लास और उमंग अपने साथ लाता था और वे ख़ुशी में मग्न इस बात की ज़्यादा से ज़्यादा कोशिश करतें थे कि इस शुभ महीने में अपने लिए जितना भी सम्भव हो पुण्य (सवाब) की दौलत कमा लें। वे इसके लिए न केवल अधिकाधिक उपासना का आयोजन करते, बल्कि अपने भीतर सांसारिक दृष्टि से पैदा होने वाली बहुत सी बुराइयों को भी दूर करते।

एक बार लेन-देन के सिलसिले में किसी से एक मुस्लिम के झगड़े की संभावना पैदा हो गई। कई लोगों का विचार था, यह झगड़ा बहुत बढ़ेगा और संभव है आपस में मारपीट की नौबत भी आ जाए। दोनों ही आदमी सख़्त मिज़ाज और झगड़ालू थे। इसी कारण किसी ने बीच में पड़ने की भी कोशिश नहीं की, परन्तु यह देखकर सब ही हैरान रह गये कि जब उस मुसलमान ने कहा, "मेरा तो रोज़ा है मैं तो तुमसे झगड़ा करूंगा नहीं।"

और इसके बाद वह फिर वहां से चला गया।

ये लोग दिन भर रोज़ा रखते, पाबन्दी से दिन में पांच बार नमाज़ पढ़ते, इसी में तरावीह की नमाज़ भी शामिल होती। ख़ैरात व सदक़ात (दान) भी करते। मालदार मुसलमान ग़रीब मुसलमानों को अपने यहां बुलाकर रोज़े खुलवाते, उन्हें भोजन कराते तथा पवित्र क़ुरआन को अधिकाधिक स्वयं पढ़ते या फिर दूसरों से सुनते।

सारांश: यह है कि पूरा महीना इसी आयोजन और देख-रेख में गुज़रता और जिस दिन रोज़े ख़त्म होते, उसके दूसरे रोज़ ईद का

त्यौहार मनाते। एक प्रकार से अपने पालनहार प्रभु अल्लाह का शुक्र अदा करते कि उसने उन्हें यह ताक़त और मौक़ा दिया कि वे रमज़ान के रोज़े पूरी ज़िम्मेदारी के साथ रख सकें।

ईद के दिन ईश्वर का आभार प्रकट करने के लिए मुसलमान सब से पहले ईद की नमाज़ पढ़ते। इसके बाद एक दूसरे से मिलने के लिए एक दूसरे के घरों पर जाते या फिर दूसरे कामों में लग जाते।

जिस तरह मुसलमानों के दूसरे सारे काम सादगी और सलीक़ामन्दी का नमूना हुआ करते थे, उसी तरह वे अपने त्यौहार को भी बड़ी सादगी तथा सलीके के साथ मनाते. इस खुशी के दिन भी वे स्वयं को सभी हराम (अवैध) चीज़ों से दूर रखते। न कोई मुसलमान शराब पीता, न जुआ खेलता और न ही इसी तरह के अन्य ग़लत कामों से मतलब रखता।

हां इस दिन खेल-तमाशों का अवश्य ही कार्यक्रम रहता। इसके अन्तर्गत घुड़दौड़ होती, दंगल होते और तलवार तथा लाठी के जौहर दिखाए जाते।

इन खेल-तमाशों में गांव के लगभग सभी लोग शरीक होते, मगर लड़ाई-झगड़ा कभी नहीं होता। यदि कभी कोई छोटा-मोटा झगड़ा हो भी जाता, तो वह वहीं ख़त्म कर दिया जाता।

शाम को ईद मिलन का प्रोग्राम होता। इसमें गांव के लगभग सभी लोगों को बुलाया जाता और बहुत से लोग इस प्रोग्राम में भी शरीक होते।

इस अवसर पर भी मुसलमानों की सबसे अधिक कोशिश इस बात की होती कि वे अल्लाह के पैग़ाम को ज़्यादा से ज़्यादा बेहतर ढंग से लोगों तक पहुंचा सकें।

मुसलमानों का कहना था

"अल्लाह का आदेश है कि लोगों को अपने प्रभु के मार्ग की ओर ज्ञान, बुद्धि और अच्छे उपदेश द्वारा बुलाओ।'

और अल्लाह के अन्तिम रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) का भी कथन है-

"उनसे ऐसी बातें कहिये कि सीधे उनके दिल में उतर जायें।"

अतः मुसलमान हमेशा इन बातों का ख़्याल रखते और जिसको भी अपने दीन (धर्म) का उपदेश देते उसके सामने अपनी बात को सच्चे मशवरे के रूप में रखते। ऐसे समय उनका अंदाज़ इतना मीठा और प्रभावपूर्ण होता कि उनकी हर बात हृदय की गहराइयों में उतरती हुई सी महसूस होती।

मुझे कभी याद नहीं कि मुसलमानों ने मेरे सामने कोई बात रखी हो और वह मुझे अप्रिय लगी हो। यह दूसरी बात थी कि उन दिनों मैं स्वयं को उनके मार्ग से भिन्न मार्ग का राही समझते हुए उनकी अनेक बातों की उपेक्षा कर दिया करता था।

इसी बीच हमारे गांव में एक अत्यन्त रोचक घटना घटी। हमारे गांव में एक पहलवान था, जिसकी दूर-दूर तक ख्याति थी और यह पहलवान अब तक बहुत सी कुश्तियां जीत चुका था।

एक दिन एक मुसलमान, जिस का नाम अरशादुद्दीन था, ने पहलवान को इस्लाम की दावत दी। पहलवान ने अरशादुद्दीन से कहा, "मैं तुम्हारा धर्म ग्रहण कर लूंगा, लेकिन शर्त यह है कि पहले मुझसे कुश्ती लड़ो और मुझे पछाड़ दो।"

इस अवसर पर बहुत से लोग मौजूद थे। कई लोगों ने कहा, यह शर्त उचित नहीं है, मगर अरशादुद्दीन ने पहलवान की इस चुनौती को स्वीकार कर लिया।

सभी ओर लोगों में इस बात की ख़बर फैल गयी। सभी को ाश्चर्य था कि अरशादुद्दीन ने इस शर्त को क्यों मान लिया, जबकि ' पहलवान नहीं, बल्कि एक साधारण शरीर के व्यक्ति हैं, उनकी ौर सब मुसलमानों की भलाई इसी में निहित है कि वे अपना इरादा दल दें। यह बात अरशादुद्दीन तक भी पहुंची, लेकिन उन्होंने साफ़ कार कर दिया-मैंने वचन दे दिया है, अब इससे पलटूंगा नहीं।"

निर्धारित दिन पर लोग दूर-दूर से आकर इकट्ठे होने लगे। इस नोखी कुश्ती का मुक़ाबला देखने का सभी को चाव था। पहलवान ौर उसके साथियों ने इस कुश्ती का प्रचार भी बहुत किया था।

अब सब लोग कुश्ती शुरू होने की प्रतीक्षा कर रहे थे कि इतने एलान हुआ और लोगों ने देखा कि पहलवान मैदान में मस्त हाथी ी तरह खड़ा हुआ है तथा दूसरी ओर से एक मामूली शरीर वाला ादमी निकला। दर्शकों ने अपनी सांसें रोक लीं और मुसलमान ाओं में लग गए। वास्तव में यह कुश्ती बड़े महत्व की थी। अब नों पहलवान एक दूसरे के क़रीब आ गए थे।

सहसा अरशादुद्दीन के शरीर में हरकत पैदा हुई उसने बड़ी ही र्ती के साथ पहलवान के एक थप्पड़ रसीद किया और थप्पड़ हलवान के लिए पराजय का कारण बन गया। वह तुरन्त ही धरती र गिरा और बेहोश हो गया।

मुसलमानों को यह देखकर बहुत ज़्यादा खुशी हुई और इस कार यह अनोखी कुश्ती कुछ ही क्षणों में ख़त्म हो गई।

मुसलमानों की इस असाधारण सफलता पर न केवल बहुत से ग मुसलमान हो गए, बल्कि मेरे पिता और उनके जैसे लोगों में क तरह का भय व आतंक पैदा हो गया।

जबकि मेरे निकट मुसलमानों से भय करने का कोई उचित

कारण नहीं था। उनके बारे में इस प्रकार सोचना भी बेकार था अब तो हमारे गांव की स्थिति में भी भारी परिवर्तन आ गया था

हफ़्ते क्या महीने बीत जाते, चोरी-चकारी और लड़ाई-झग की एक बात भी सुनने में नहीं आती और यदि वास्तव में इस प्रका की कोई बात होती भी, तो वह इतनी मामूली होती कि लोग उसक कोई महत्व ही नहीं देते।

अब यह कोई ज़्यादा अहम बात तो नहीं थी। केवल इतना हुअ था कि हमारे एक पड़ोसी के खेत में से किसी ने रात में मक्का के कुछ भुट्टे तोड़ लिये थे जो एक बहुत ही मामूली सी बात थी।। यह भ सम्भव था कि राहगीर ने अपनी भूख मिटाने के लिए तोड़ लि हों—लेकिन मुसलमानों ने उसे भी काफी महत्व दिया। उनके निक यह एक अत्यन्त चिन्ताजनक रोग का आरम्भ था।

मुसलमानों ने गुप्त रूप से इस चोरी की पूछताछ शुरू कर द और एक दिन वे अपने उद्देश्य में सफल हो गए।

भुट्टे तोड़ने वाले व्यक्ति ने स्वीकार किया कि उसने यह भुट्टे तो हैं। इसके साथ उसने यह भी कहा कि उसके ऐसा जानते-बूझते नह किया है, बल्कि वह इस बारे में धोखा खा गया है। उस खेत व बराबर उसका अपना भी खेत था। उस समय रात के अंधेरे उसने समझा कि वह अपने खेत से भुट्टे तोड़ रहा है।

बात बड़ी अजीब थी और किसी की भी समझ में नहीं आ रह था कि क्या फ़ैसला होना चाहिए। वह कह रहा था, उसे धोखा हुअ है या उसने जानबूझ कर चोरी की है।

मुसलमानों की नज़र में यह व्यक्ति अपराधी था, अतः उ उचित सज़ा दी गई।

इस समय एक ख़ास बात यह बताने की है कि जब से मुसलमा

ःमारे गांव में आए थे, लगान (टैक्स) की वसूली के लिए आने वाले ाजा के कारिन्दों के रवय्ये में भी बहुत बड़ा अन्तर पैदा हो गया ॥।

राजा के लोग गांव में आते, एक दिन पहले सारे गांव में लगान ि वसूली का एलान किया जाता तथा अगले दिन लगान की वसूली ोती।

मुसलमानों ने राजा से मिल कर लगान के लिंए एक उचित दर ाय करा ली थी। अब दोनों फसलों पर इसी दर के अनुसार लगान ासूला जाता था, अब न किसी से अधिक मांगा जाता था और न ोई कम देने की कोशिश करता था। हां यदि किसी किसान के पास ३स दिन लगान की पूर्ति के लिए रकम नहीं होती, तो मुसलमान ऐसे कसान को किसी से क़र्ज़ दिला देते और यदि कोई बिल्कुल ही ाजबूर होता, तो उसका लगान अपने पास से ही चुका देते तथा उसे ान्य लोगों के बीच रुसवा होने से बचा लेते।

दो-एक बार ऐसा भी हुआ कि एक से ज़्यादा किसानों की फसल ़राब हो गई और इस कारण उनके लिए लगान चुकाना बहुत ठिन हो गया, तो ऐसी परिस्थिति में मुसलमानों ने अपने असर से ाम लेकर राजा की ओर से उन ग़रीब किसानों का लगान माफ़ ्रा दिया। इसके अलावा मुसलमानों ने निजी रूप से ऐसे बहुत से ामों के लिए एक फंड (कोष) का भी प्रबन्ध कर रखा था।

इस फंड में से आमतौर से ऐसे लोगों को क़र्ज़ दिया जाता था, जनके पास ज़मीन तो है, परन्तु बैल न होने के कारण वे उससे ाचित लाभ नहीं उठा सकते, या दो बैलों में से केवल एक बैल है या ानका हल बेकार पड़ा हुआ है—या दोनों बैल भी हैं, लेकिन समय र उनके पास खेती बोने के लिए बीज नहीं है। या इस प्रकार की

कोई दूसरी ज़रूरत है, लेकिन वे अपनी इस ज़रूरत को पूरी करने से मजबूर हैं।

मुसलमान इस फंड की रक़म से इस तरह की लगभग सारी ज़रूरतों को पूरा करने की कोशिश करते और बड़ी हद तक वे इसमें सफल भी हुए।

इस काम के लिए बाक़ायदा एक कमेटी बनाई जाती। इस कमेटी में आमतौर से तीन व्यक्ति होते जो आपसी मशविरे से यह तय करते कि किस व्यक्ति की ज़रूरत ज़्यादा अहम है तथा उस व्यक्ति की किस हद तक सहायता की जा सकती है।

इसके बाद यह सहकारी क़र्ज़ नकद न देकर बैल वाले को बैल, हल वाले को हल, बीज वाले को बीच तथा दूसरी ज़रूरत वाले की ज़रूरत पूरी कर दी जाती।

ऐसे सभी लोगं जो सहकारी क़र्ज़, बैल, हल, बीच तथा कुछ दूसरी चीज़ों के रूप में हासिल करते, वे फसल तैयार होने पर यह क़र्ज़ तुरन्त अदा कर देते।

कभी यह अदायगी एक बार में होती और कभी किश्तों में। इस बारे में भी कमेटी ही तय करती कि किस व्यक्ति को किस रूप में अपना क़र्ज़ चुकता करना है। कभी-कभी फसल लगातार ख़राब होने की वजह से यह क़र्ज़ माफ़ भी कर दिया जाता।

मुसलमानों में शादी–विवाह तथा शोक का भी एक ख़ास अन्दाज़ होता था। वे ऐसे भावुक अवसरों पर भी सन्तुलन नहीं खोते थे।

ये लोग जब से हमारे नगर में आए थे, इनके यहां मृत्यु की भी घठनाएं घटी थीं तथा विवाह के अवसर भी आये थे, परन्तु इन दोनों ही अवसरों पर मुसलमान ने अपना सन्तुलन और अपनी सादगी को

बनाये रखा।

किसी के यहां मौत होती तो वह मरने वाले पर रोने-पीटने और चिल्लाने के बजाए शान्ति के साथ पवित्र क़ुरआन का पाठ करते हुए मरने वाले के लिए अल्लाह से क्षमा की दुआएं करता। हां यदि किसी को बहुत अधिक दुःख होता, तो उसके भी केवल आंसू निकल आते थे, चीखने-चिल्लाने और कोलाहन करने से यह भी बचता था।

जनाज़ा तैयार होने के बाद घर से बाहर आ जाता और फिर सारे मुसलमान मरने वाले की जनाज़े की नमाज़ पढ़ते। अपने पालनहार प्रभु से मरने वाले के प्रति मोक्ष की दुआ मांगते। उसके कहे--सुने को माफ़ करते और इसके बाद मय्यत को क़ब्रिस्तान की ओर लेकर चलते। मय्यत की चारपाई चार व्यक्तियों के कंधों पर होती। रास्ते में सारे लोग मय्यत को कन्धा देते चलते। उन ही चार व्यक्तियों के कन्धों पर मय्यत को नहीं छोड़ दिया जाता। कन्धा बदलते-बदलते क़ब्रिस्तान आ जाता। उस समय तक लगभग क़ब्र तैयार हो चुकी होती। मय्यत को बड़ी ही सावधानी और आदर के साथ क़ब्र में उतार दिया जाता। यदि किसी औरत की मय्यत होती तो पहले क़ब्र के चारों ओर पर्दे की व्यवस्था की जाती और मय्यत को क़ब्र में उतारने वाले मरने वाली औरत के क़रीब के रिश्ते वाले होते। इसके बाद तख़्तों तथा मिट्टी से क़ब्र को बन्द कर दिया जाता।

अपनी दशा और स्थिति की दृष्टि से यह दृश्य भी बड़ा ही करुणाजनक होता। परन्तु वही सन्तोष, धैर्य और कृतज्ञता और मोक्ष की दुआएं और बस! विवाह के उत्सव में भी ऐसे ही सन्तुलन का प्रदर्शन होता।

मुझे अच्छी तरह याद है, नगर के एक धनी मुसलमान की लड़की का विवाह था। सोचता था न जाने कितना हंगामा और कैसी

व्यवस्था होगी। दूर-दूर से नाचने-गाने वाली आएंगी, भांड और नक्काल बुलाए जायेंगे। कई दिन पहले से रंग खेला जाएगा और न जाने क्या-क्या किया जायेगा।

आखिर एक ही तो बेटी है, जो कुछ न किया जाये वह थोड़ा है।

परन्तु हुआ तो केवल इतना......!

एक दिन नियत समय पर कुछ मुसलमान इकट्ठे हो गए। न बारात, न बाजा, न नाच, न गाना। केवल दो मुसलमानों की गवाही और चन्द रुपए के मह्र के बदले दूल्हा-दुल्हन का निकाह (विवाह पढ़ा दिया गया और फिर कुछ देर बाद दुल्हन को दूल्हा तथा उसके घर वालों को खुशी-खुशी विदा कर दिया गया। न कोई रस्म हुई न बाबुल ने पछाड़ खाई, न भइया को मूर्च्छा हुई, न डोमनियों ने विदाई के लिए कोई शिकायत की। बस माता और पिता ने सिर पर हाथ रखा, कुछ उपदेश दिये और फिर सुखी दाम्पत्य जीवन की दुआएं देते हुये विदा किया।

दहेज में बहुत ही थोड़ा सा सामान था। शायद दो-चार जोड़े कपड़े, एक लकड़ी का बक्स, एक चारपाई और दो-चार खाने-पीने के बर्तन।

एक धनवान मुसलमान ने अपनी बेटी को दहेज में यह सामान दिया था। क्या वह कंजूस था ? नहीं, उसने ऐसा केवल इसलिए किया था कि वह किसी निर्धन मुसलमान की लड़की से अधिक अपनी लड़की को दहेज देकर उसका हृदय दुखाना नहीं चाहता था और उसने वास्तव में ऐसा कर दिखाया था।

मुसलमानों की नज़र में शिक्षा का भी काफी महत्व था। उन्होंने गांव में इस काम को बहुत ही छोटे पैमाने पर मस्जिद के अन्दर शुरू किया। परन्तु जैसे-जैसे गांव में मुसलमानों की संख्या बढ़ी और

इसके साथ ही मुसलमान बच्चों की संख्या में वृद्धि हुई, तो फिर पढ़ने-पढ़ाने के लिए अलग से एक जगह का प्रबन्ध किया गया।

यह प्रबन्ध सब मुसलमानों ने मिल-जुल कर किया था और इसकी देख-रेख भी इन लोगों के सुपुर्द थी। हां सब लोगों ने मिलकर कुछ व्यक्तियों को चुन लिया था, जिनके ज़िम्मे स्कूल तथा उससे सम्बन्धित सारे कामों की ज़िम्मेदारी थी।

इस स्कूल में तो मुख्य रूप से धार्मिक शिक्षा दी जाती थी, लेकिन इसकी भी व्यवस्था थी कि यदि कोई चाहे तो गणित और कुछ अन्य विषय भी सीख सकता है।

पढ़ाने के लिए जो लोग नियुक्त थे, वे अत्यन्त सच्चे लोग थे तथा बुलन्द-अख़लाक़ वाले थे। अतः ये लोग बच्चों को केवल पुस्तक सम्बन्धी शिक्षा ही न देते, बल्कि इनका धार्मिक और नैतिक प्रशिक्षण भी करते।

वे बच्चे जिनका ज़्यादातर समय गांव में इधर-उधर घूमने-फिरने परस्पर लड़ने-झगड़ने तथा एक-दूसरे को बुरा-भला कहते गुज़रता था, अब दूसरों के लिए एक अच्छी मिसाल बन रहे थे।

एक दिन गांव के कुछ बच्चे खेतों की ओर निकल गए और किसी खेत से गन्ने तोड़ कर खाने लगे। इन बच्चों में एक मुसलमान बच्चा भी शामिल था। उसने अब तक गन्ने को हाथ नहीं लगाया था और बिल्कुल अलग खड़ा हुआ था।

उसके एक साथी ने कहा,

"क्यों, तुम अलग कैसे खड़े हो? तुम भी अपने लिए एक गन्ना तोड़ लो।"

मुसलमान बच्चे ने उत्तर दिया,

"यह पराया खेत है। मैं इसमें से गन्ना नहीं तोड़ूंगा, चोरी करने वाले को अल्लाह मियां बहुत मारते हैं।"

मुसलमानों के बढ़ते हुए असर में जब गांव के अन्दर लोग आ गये और केवल कुछ परिवार ही मुसलमान होने से बाक़ी रह गए जिनमें स्वयं एक हमारा परिवार और कुछ दूसरे परिवार शामिल थे तो मेरे पिता की परेशानी चरम सीमा को पहुंच गई, वे वास्तव में इतने निर्बल हृदय के आदमी नहीं थे, परन्तु जिन लोगों पर हमारी मान-मर्यादा, महानता तथा दौलतमंदी निर्भर थी, वे धीरे-धीरे सब मुसलमान होते जा रहे थे या हो चुके थे।

ऐसी दशा में कोई भी इंसान अपने भविष्य के बारे में चिन्तित हो सकता है। अतः मेरे पिता की व्याकुलता स्वभाविक ही थी

वे इन दिनों इस विषय पर सोच-विचार कर रहे थे कि इसी गांव में रहें या किसी दूसरी जगह चले जाएं।

दूसरे स्थान पर जाने में सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि उस गांव की जायदाद को कोई उचित मूल्य पर लेने को तैयार नहीं होता और यों उसे पानी की तरह बहा कर या ऐसे ही छोड़ कर जाने के लिए वे तैयार नहीं थे।

कई दिनों तक सोच-विचार करने के बाद अन्त में एक दिन उन्होंने यही फैसला किया कि वे उसी गांव में रहेंगे।

मेरे पिता जी के मुसलमानों से सम्बन्ध बहुत अच्छे थे। इसलिए मुसलमान उनके पास आते रहते थे। परन्तु ऐसा संयोग बहुत कम होता था कि वे यह अभिलाषा लेकर न आते हों कि मेरे पिता इस्लाम का निमंत्रण स्वीकार कर लें।

वे इस्लाम के पैग़ाम को तरह-तरह से पेश करते।

"हमें उस परमेश्वर का शुक्र अदा करना चाहिए जिसने हमा

ऊपर हज़ारों उपकार किये हैं। उसका यह उपकार कितना महान है कि उसने हमें इंसान बनाया। यदि वह चाहता तो हमें एक तुच्छ कीड़ा भी बना सकता था। लेकिन उसकी हम पर बड़ी मेहरबानी है। फिर उसने हमें देखने के लिए दो आंखें, सुनने के लिए दो कान, सोचने-विचारने के लिए दिमाग़, खाने के लिए मुंह, सूंघने के लिए नाक तथा चलने-फिरने और चीज़ों को काम में लाने के लिए हाथ—पांव दिए ताकि हम उसका शुक्र अदा करें तथा उसके सदाचारी और शुक्रगुज़ार बंदों में शामिल हों।"

मेरे पिता के लिए अब यह सारी बातें नई नहीं रही थीं। वे ये सब बातें उस समय से सुनते आ रहे थे, जब से मुसलमानों ने इस गांव में क़दम रखा था। फिर वे गांव के परिवर्तन से भी भलीभांति अवगत थे। अब किसानों को अपनी तैयार फसलों और खलिहानों की रात—रात भर जाग कर चौकीदारी भी नहीं करनी पड़ती थी। अब किसी ग़रीब किसान को अपनी खेती के लिए नक़द या किसी भी प्रकार की चीज़ की ज़रूरत पड़ने पर किसी के आगे गिड़गिड़ाना नहीं पड़ता था। अब किसी को अंधेरे—उजाले में अपनी जानों का भय भी महसूस नहीं होता था। अब किसी के दस रूपए उधार लेकर दस साल तक क़र्ज़दार रहने से भी छुटकारा मिल गया था। अब किसी के जानवर यों ही आज़ादी से खेतों में चरते नहीं फिरते थे।

मेरे पिता इन सारी सच्चाइयों को मानते भी थे। इस सिलसिले में जब कभी कोई बातचीत होती तो वे साफ़ शब्दों में यह स्वीकार करते? यह सच है। इन लोगों में अच्छाई-बुराई का एहसास है, ये सच्चे लोग हैं, न्यायप्रिय हैं तथा अपने अच्छे उसूलों की सख़्ती से पाबन्दी करते हैं।

कुछ महीने पहले मेरे पिता जी और मुसलमानों के बीच एक

समझौता हुआ था। इस समझौते के तहत जो लोग मेरे पिता जी के क़र्ज़दार होंगे, उन्हें ऐसी स्थिति में भी क़र्ज़ चुकाना होगा जबकि वे मुसलमान हो चुके होंगे।

मुसलमान इस समझौते का अब तक सख़्ती के साथ पालन कर रहे थे। गांव का कोई भी व्यक्ति उनके पास मुसलमान होने के लिए आता तो वह उससे यह भी पूछते कि वह मेरे पिता का क़र्ज़दार तो नहीं है। यदि वह क़र्ज़दार होता तो उससे सबसे पहले मेरे पिता का क़र्ज़ चुकता कराते और यदि उस समय वह इस स्थिति में नहीं होता, तो कोई न कोई मुसलमान उसका क़र्ज़ चुका देता। तथा इस प्रकार मेरे पिता का बहुत सा वह रुपया भी वापिस मिल जाता जिसको अब से पहले वह स्वयं भी डूबा हुआ समझते थे।

मेरे पिता जी इस बात को भी स्वीकार करते थे कि मुसलमानों ने उन्हें कभी हीन भावना और गिरी निगाह से नहीं देखा था। वे मेरे पिता जी का अब भी पहले की ही भांति आदर-सत्कार किया करते थे। यद्यपि उनमें कुछ ऐसे भी मुसलमान थे, जिनसे मेरे पिता जी के सम्बन्ध कभी अच्छे नहीं रहते थे। मेरे पिता उन्हें और वे मेरे पिता जी को हमेशा ही नुक़्सान पहुंचाने की कोशिश करते रहे थे। तथापि उनमें कुछ ऐसे भी लोग थे, जिनसे हमारी सालों से ख़ानदानी दुश्मनी चली आ रही थी। वे निजी रूप से मेरे पिता तथा मेरे ख़ानदान को कभी नुक़्सान पहुंचाने से चूकते नहीं थे और मेरे पिता तथा अन्य रिश्तेदार भी कभी अपनी कथनी व करनी से नहीं चूकते थे।

एक दूसरे का जानी और माली नुक़्सान पहुंचाने के लिए डाके डलवाते, चोरियां कराई जातीं, खेतों और खलिहानों को आग लगवाई जाती। जानवरों को ग़ायब कराया जाता। यहां तक कि परस्पर हत्या की घटनाएं भी हो जाती थीं।

मुझे अच्छी तरह याद है। उस समय मेरी उम्र लगभग १३ या १४ वर्ष की थी, मेरे पिता ने गांव के पश्चिम में एक खेत खरीदा था। यह खेत एक बूढ़ी औरत का था जिसका एक ही जवान बेटा था और वह कुछ ही महीने पहले एक अचानक बीमारी में मर चुका था, बूढ़ी औरत के पास वैसे ही क्या था, जवान बेटे की बीमारी और उसकी मृत्यु ने जो कुछ था वह भी ख़त्म कर दिया था। और अब उसके पास इतना रुपया नहीं था कि वह दो घड़ी चैन से बैठ कर खा-पी सके। उसने मजबूर होकर अपनी ज़मीन को बेचने का इरादा किया। खेत बहुत उपजाऊ था। मेरे पिता जी के अलावा और भी अनेक लोग वह खेत ख़रीदना चाहते थे।

जब चीज़ कम हो और ख़रीदार ज़्यादा हों तो स्पष्ट है, क़ीमत में ज़्यादती हो जाती है और यही हुआ भी। फिर यहां बात कुछ बीघे ज़मीन की ही नहीं, अपने-अपने सम्मान की भी थी। बूढ़ी औरत के इस खेत को न केवल मेरे पिता ने अपने सम्मान का मसला बना लिया, बल्कि दूसरे लोग भी अपनी इज़्ज़त उसी में देखते थे कि खेत हाथ से न जाने पाए। परन्तु किसी तरह मेरे पिता ने यह खेत हासिल कर लिया और उसके साथ ही उन्होंने एक बहुत बड़ी मुसीबत भी मोल ले ली।

अगले सप्ताह हमारे नये बैलों की जोड़ी खो गई। मेरे पिता के लिए यह मामूली बात नहीं थी और फिर ऐसी हालत में कि जब उन्हें यह बताना चाहा कि हमारा मुक़ाबला करना आसान नहीं।

वे बिफर उठे-''मैंने भी इसी गांव की धरती पर जन्म लिया है। मैं भी इसी धूप-छांव में सांस लेकर जवान हुआ हूं और मुझे भी अपने जीवन की अन्तिम घड़ियां इसी गांव में रहकर व्यतीत करनी हैं।''

मैं नहीं बता सकता कि इसके बाद इस मामूली सी घटना ने कितना बड़ा रूप धारण कर लिया। वर्षों तक दोनों ओर की माली और जानी कितनी हानि हुई और शायद आपको इससे कोई ख़ास दिलचस्पी भी न हो।

तथापि अब इस प्रकार की कोई घटना मौजूद नहीं थी। यद्यपि वे सारे लोग अब भी मौजूद थे तथा मेरे पिता जी से अब भी मिलने आते थे, परन्तु इस तरह जैसे उनमें कभी तनिक-सा भी झगड़ा न रहा हो। ये सदा से ऐसे ही थे और अब भी ऐसे ही हैं।

इनमें से अधिकतर लोग मुसलमान हो चुके थे तथा मुसलमान होने के बाद उन्होंने पहले ही दिन से अपने दिल को हर प्रकार के ईर्ष्या-द्वेष तथा कपट आदि से मुक्त कर लिया था। और यदि मैं यह कहूं तो शायद ग़लत न होगा कि इन लोगों ने मुसलमान होते ही मेरे पिता के पास आकर माफ़ी चाही थी।

अल्लाह तआला का आदेश है "अल्लाह के बन्दो! परस्पर भाई-भाई बनकर रहो।" अब हमारे लिए यह उचित नहीं है कि हम एक ही माता-पिता की सन्तान इस प्रकार आपस में एक-दूसरे के प्रति अपने मन में नफ़रत को जगह दें तथा एक-दूसरे के आदर व सम्मान तथा धन-सम्पत्ति को हानि पहुंचाएं। हमारे मन में तो वास्तव में एक दूसरे के प्रति ऐसी अच्छी भावना होनी चाहिए कि दूसरे के सम्मान को अपना सम्मान, दूसरे के अपमान को अपना अपमान, दूसरे के कष्ट को अपना कष्ट और दूसरे की नाराज़गी को अपनी नाराज़गी समझें।

इस समय मेरे पिता की भी अजीब हालत हो गई थी। उनकी बूढ़ी आंखों में आंसू कपकपा रहे थे। तथा उनका हृदय इस सत्य को ग्रहण करने की बार-बार कोशिश कर रहा था कि इस्लाम एक पूर्ण

और सर्वश्रेष्ठ दीन (धर्म) है। लेकिन उनके अभिमान और अहंकार की यही अपेक्षा थी कि वे इस सत्य को स्वीकार न करें और फिर ऐसा ही हुआ।

उन्होंने मुसलमानों की इस बन्धुत्व भावना का आदर अवश्य किया, लेकिन इस तरह मानो किया नहीं, करवाया गया है।

मेरे पिता शायद एक दिन कुछ मूड में थे या फिर वास्तव में उन्हें मुसलमानों से तथा उनके धर्म में रूचि पैदा होने लगी थी।

एक दिन जब कुछ मुसलमान उनसे मिलने आए, तो उन्होंने पूछा, आप लोगों में कोई राजा भी होता है या नहीं और यदि कोई राजा होता है, तो क्या वह भी इतना ही अच्छा आदमी होता है।''

मुसलमानों ने बताया- ''इस्लामी राज्य के शासक को ख़लीफ़ा या अमीरुल मोमिनीन कहते हैं। ख़लीफ़ा या अमीर उत्तराधिकारी के रूप से नहीं, बल्कि जनता के द्वारा निर्वाचित किया जाता है तथा उसका निर्वाचन इस आधार पर होता है कि वह पवित्र क़ुरआन तथा नबी (सल्ल०) के आदेशों का कितना पाबन्द है। यदि वह पवित्र क़ुरआन के आदेशों पर चलता तथा नबी (सल्ल०) की सुन्नत का पालन करता है, तो मुसलमान उसे अपना ख़लीफ़ा मानते हैं। लेकिन यदि वह अपना तरीक़ा बदल दे, तो उसे पद से हटाया भी जा सकता है। चोरी करे, तो उसका हाथ काटा जा सकता है। ज़िना करे तो उसको सज़ा दी जा सकती है। यदि वह मामूली से मामूली आदमी को भी गाली दे तो उसे भी इसकी सज़ा दी जायेगी। यदि वह किसी को कष्ट पहुंचाए तो उसे भी वैसे ही कष्ट पहुंचाया जा सकता है। न वह जनता से पर्दा कर सकता है न घमंड से पेश आ सकता है और न वह बैतुलमाल (ख़ज़ाने) को अपने व्यक्तिगत खर्च में लाने का अधिकारी है।

देखिए, यह सब से पहले ख़लीफ़ा हज़रत अबू बक्र सिद्दीक (रज़ि०) के शब्द हैं–

"लोगो! मैं तुम्हारा ख़लीफ़ा नियुक्त हुआ हूं। यद्यपि मैं तुम से श्रेष्ठ नहीं हूं। लोगो! मैं अनुयायी हूं कोई नई बात उत्पन्न करने वाला नहीं हूं। यदि मैं ठीक काम करूं तो मुझे सहयोग दो और यदि मैं टेढ़ा (भ्रष्ट) हो जाऊं तो मुझे सीधा कर दो।"

एक ख़लीफ़ा बैतुलमाल से कितना लाभ उठा सकता है, दूसरे ख़लीफ़ा हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि०) का यह कथन उल्लेखनीय है–

"मैं स्वयं बताता हूं कि मुझे बैतुलमाल से कितना लेना वैध है। दो जोड़े कपड़े..........एक जाड़े का, एक गर्मी का और एक सवारी ज़िस पर हज कर सकूं। तथा क़ुरैश के एक मध्यम श्रेणी के आदमी के भोजन पर व्यय के बराबर अपने और अपनी पत्नी व बच्चों के लिए भोजन का व्यय। इसके बाद मैं एक साधारण मुसलमान के समान मान-मर्यादा रखता हूं। जो उनकी दशा होगी वही मेरी दशा होगी।"

"क्या कभी ऐसा भी हुआ है?"

मेरे पिता ने कुछ अधिक रूचि लेते हुए पूछा "ख़लीफ़ा या उसके किसी निकटवर्ती सम्बन्धी ने कभी कोई छोटा-बड़ा अपराध किया हो और उसे इस प्रकार का दंड दिया गया हो?"

"जी हां" एक मुसलमान ने बताया–

मैंने अभी बताया था कि दूसरे ख़लीफ़ा का नाम हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि०) था।

"एक बार आपके लड़के से एक बड़ा अपराध हो गया। अतः इस बात का विचार किए बिना कि अपराध करने वाला ख़लीफ़ा का

पुत्र है, क़ानून के अनुसार नंगी पीठ पर सौ कोड़े लगवाए गये, यहां तक कि इस बीच ख़लीफ़ा के पुत्र का देहान्त हो गया।"

"अच्छा तो इस्लाम में बड़े अपराध की बड़ी सज़ा दी जाती है? मेरे पिता ने पूछा।

"जी हां, और एक अजीब बात यह भी है कि जो लोग आख़िरत पर यक़ीन रखते हैं और वहां की सज़ा से डरते हैं वे अगर छिपे में भी ग़लती से कोई अपराध कर बैठते हैं, तो वे ख़ुद ज़िम्मेदारों के सामने अपना अपराध स्वीकार करते हैं और दुनिया ही में उसकी सज़ा पाने को प्राथमिकता देते हैं।

फिर मुसलमान व्यक्ति ने मेरे पिता को एक घटना सुनाई—

एक बार अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के पास एक औरत आई और कहने लगी, मुझ से नादानी में व्यभिचार का अपराध हो गया है और अब मैं मां बनने वाली हू अतः शरीअत (धर्मशास्त्र) में मेरे लिए जो दंड निर्धारित हो वह मुझे दिया जाए!

चूंकि वह औरत शीघ्र ही मां बनने वाली थी, इसलिए आपने फ़रमाया, "जाओ, प्रसव के बाद आना।"

बच्चे की पैदाइश के बाद वह औरत आपके पास फिर आई और सज़ा के लिए निवेदन करने लगी। आपने कहा, "जाओ इस बच्चे को दो साल तक दूध पिलाओ, इसके बाद आना।"

औरत दो वर्ष पूरे करके फिर आई और अब उसे सज़ा दी गयी।

"बड़ी ही बहादुर और निडर औरत थी?" मेरे पिता ने आश्चर्य-चकित होकर कहा। "नहीं, यह औरत इतनी बहादुर नहीं थी, जितनी कि आख़िरत की यातना (अज़ाब) से डरने वाली थी, उसे मालूम था कि आख़िरत की सज़ा इससे कहीं अधिक सख़्त होगी,

इसी वजह से उसने इस सज़ा को स्वीकार किया।"

मेरे पिता जी काफी बूढ़े और कमज़ोर हो चुके थे। उनका अधिकांश समय पूजा-पाठ और आराम में बीतता था। खेतों और ज़मीन की देख-रेख के लिए वह पहले ही बहुत कम जाया करते थे। अब तो इसका प्रश्न ही नहीं उठता था। परन्तु मैंने उस दिन देखा कि वह प्रातः ही उपासना के बाद कहीं बाहर जाने की तैयारी कर रहे हैं। कुछ देर बाद वह तैयार होकर बाहर की ओर चल दिए। बिल्कुल तन्हा! शायद यह पहला अवसर था कि वे इस तरह किसी से कुछ कहे बिना एकाकी घर से बाहर जा रहे थे। मेरे पूछने पर केवल उन्होंने इतना बताया– "मैं आज गांव में घूमूंगा।" और फिर वह गांव में घूमने के लिए चल दिए।

मेरा विचार है कि वे कुछ गलियों और मार्गों से आज पहली बार गुज़र रहे थे। उन्होंने एक स्थान पर देखा कि एक मुसलमान अपने घर की दीवार ऊंची कर रहा है। मेरे पिता ने ठहर कर पूछा कि वह ऐसा किस लिए कर रहा है, जबकि उसके घर की हद बन्दी के लिए मौजूदा दीवार काफी है।

मुसलमान ने बताया "दीवार नीची होने के कारण मेरे घर की औरतों की बेपर्दगी होती है। मैं अपनी औरतों को बेपर्दगी से बचाने के लिए दीवार ऊंची कर रहा हूं।"

"तो क्या अब तुम्हारी औरतें धर से बाहर भी नहीं निकलेंगी?"

"जी, हमारी औरतें घर से बाहर निकल सकती हैं, लेकिन कोई ख़ास ज़रूरत पड़ने पर और वह भी इस हालत में कि उन का सारा शरीर छुपा हुआ हो।"

मेरे पिता एक और स्थान पर रुके। यहां कुछ मुसलमान एक गाय को ख़रीदने-बेचने में लगे थे। गाय बेचने वाला ख़रीदार को

बता रहा था–

"इसमें कुछ ख़राबी भी हैं। इसके एक थन से दूध नहीं निकलता है। दूध निकालते समय परेशान करती है तथा भूसे और खली के अलावा दूसरी कोई चीज़ पसन्द नहीं करती है।"

मेरे पिता ने हंस कर कहा, "मेरे भोले–भाले भाई! तुम तो इस गाय के दोष इस तरह बता रहे हो जैसे यह उसके गुण हों। क्या ऐसी हालत में तुम्हें इसके उचित दाम मिल सकते हैं?"

"मुझे अपनी गाय इस तरह बेचने में भले ही हानि हो" मुसलमान ने मेरे पिता को उत्तर दिया। "लेकिन मेरे ईमान का यह तक़ाज़ा नहीं है कि मैं अपने किसी भाई को धोखा देकर लाभ हासिल कर लूं।"

मेरे पिता यहां भी ठहर गए?

एक मुसलमान बढ़ई लकड़ी की चिराई कर रहा था। मेरे पिता जी ने कहा, "तुम अकेले इतना परिश्रम क्यों कर रहे हो? तुम्हारा दूसरा साथी कहां है?"

"मेरा साथी एक दूसरे गांव गया हुआ है और वह शायद कल वापस आएगा।" "तो फिर इतनी जल्दी किस लिए–? इस काम को कल कर लेना।"

"लेकिन मैंने तो यह काम आज शाम तक पूरा करने का वचन दे रखा है।"

"तो क्या हुआ कह देना कि कल हो जायेगा।" "नहीं श्रीमान! मैं वायदा-ख़िलाफ़ी नहीं कर सकता। प्रतिज्ञा भंग करना एक मुसलमान के लिए बहुत बुरी बात है।"

"अरे भाई, यह कहां की समझदारी है, यह इस ओर जब इतनी ज़मीन पड़ी हुई है तो तुम अकारण अपनी दीवार को क्यों टेढ़ी किये

ले रहे हो?"

यहां एक मुसलमान अपने घर की दीवार बना रहा था, जो तनिक टेढ़ी थी। उसने मेरे पिता की ओर देखा—"श्रीमान! यह ज़मीन मेरी नहीं एक अनाथ बालक की मिल्कियत है।"

"तो क्या हुआ, तुम्हें अपनी दीवार सीधी करने के लिए बहुत थोड़ी-सी तो ज़मीन चाहिए।"

"जी वह कितनी भी सही, लेकिन मैं मुसलमान हूं और एक मुसलमान के लिए किसी अनाथ का माल या सम्पत्ति हड़प करना एक बहुत बड़ा अपराध है। अल्लाह तआला मुझे इस गुनाह से बचा कर हमेशा अपनी शरण में रखे।"

"अरे भई सुनो!" मेरे पिता एक अधेड़ आयु के व्यक्ति से सम्बोधित थे। वह अधेड़ आयु का आदमी गांव के तालाब से मिट्टी निकाल रहा था। मेरे पिता के पुकारने पर वह तुरन्त खड़ा हो गया।

"क्या बात है श्रीमान ?"

"मुझे याद पड़ता है कि शायद अब से पहले तुम भीख मांगा करते थे। क्या अब इस काम को छोड़ दिया ?"

"जी हां!" अधेड़ आयु के व्यक्ति ने मेरे पिता के समीप आते हुए कहा।

"लेकिन क्यों ?" मेरे पिता ने पूछा, "क्या गांव में अब भीख मिलनी बन्द हो गई?"

"जी नहीं" और फिर उसने सारी घटना इस तरह बयान की—

"शायद यह पिछले सप्ताह की घटना है। मैं एक दिन मुसलमानों के सरदार के यहां भीख मांगने गया। सरदार घर पर मौजूद थे। उन्होंने मुझ से मालूम किया, क्या तुम्हारे पास कोई चीज़

मौजूद है?"

"जी हाँ!" मैंने बतलाया कि मेरे पास एक गर्म चादर और दो पीतल के लोटे हैं।"

उन्होंने कहा, "यह तीनों चीज़ें मेरे पास ले आयो।"

मैंने तुरन्त ही यह तीनों चीज़ें सरदार के सामने लाकर रख दीं। सरदार के पास उस समय अनेक लोग बैठे हुए थे उन्होंने उन लोगों से मालूम किया। क्या कोई तुममें से इन चीज़ों का ख़रीदार है?" और तुरन्त ही दोनों चीज़ें दो रुपए में बिक गईं।

प्रधान ने आठ आने मेरे हाथ पर रख दिए और कहा—"जाओ एक फावड़ा ख़रीद लाओ।"

मैं जल्दी से जाकर एक फावड़ा ख़रीद लाया।

सरदार ने उसमें अपने हाथ से दस्ता डाला और फिर मुझे देते हुए कहा, "इस समय गांव में बहुत से घर बन रहे हैं। तुम भी मिट्टी ढोने का काम करो—दूसरों के आगे हाथ फैलाना बहुत बुरी बात है। अल्लाह उन लोगों को पसन्द करता है जो अपनी जीविका मेहनत से कमाते हैं।

फिर सरदार ने मेरी शेष राशि मुझे सौंप कर विदा कर दिया। उसी दिन से मैं मिट्टी का काम कर रहा हूं और यह सच है कि यह काम मेरे लिए बहुत ज़्यादा लाभदायक है।

अब मेरे पिता मुसलमानों के सरदार के पास बैठे हुए थे। सरदार का मकान, उसका वस्त्र तथा ज़रूरत की दूसरी चीज़ें एक साधारण मुसलमान की चीज़ों से ज़्यादा बेहतर नहीं थी। मेरे पिता का आश्चर्य और अधिक बढ़ गया।

"आप तो तमाम गांव के मुसलमानों के सरदार हैं। फिर भी आपकी यह दशा है, न रहने के लिए अच्छा घर, न पहनने के लिए

अच्छे वस्त्र और न कुछ दूसरी अच्छी चीज़ें। बड़ा आश्चर्य है।"

"इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है।" सरदार की वाणी अत्यन्त ही मृदुल और स्नेह से ओत–प्रोत थी। "मुसलमानों का सरदार हूं और यह सब लोग मुझे अपना सरदार मानते भी हैं, लेकिन गांव में मेरे पास इस समय जितनी ज़मीन है, मुझे उससे उतना ही प्राप्त हो पाता है कि मैं साधारण रूप से ही अपना ख़र्च पूरा कर सकूं। मेरे लिए यह किसी तरह उचित नहीं है कि मैं साधारण मुसलमानों की कमाई से अपने ऐश का सामान इकट्ठा करूं। अल्लाह तआला मुझे इस अन्याय और अधर्म से सदा दूर रखे।"

मेरे पिता को गांव में घूमते-फिरते अब काफी देर हो गई थी। अब वे तनिक थकावट भी महसूस कर रहे थे। परन्तु उनकी इस रूचि में अभी तक कोई कमी नहीं दिखाई देती थी जो गांव के इस नए वातावरण ने उनके अन्दर पैदा कर दी थी।

उन्होंने चलते-चलते एक मुसलमान को रोक लिया?

"अरे भई! यह इस समय कहां जा रहे हो?"

"जी—में ज़रा गांव किरनपुर जाऊंगा।"

"ख़ैरियत तो है?"

"जी अल्लाह का शुक्र है, उसकी कृपा है।"

"फिर क्या ऐसी आवश्यकता आ पड़ी है?"

"जी क्या बताऊं—काफी समय हुआ मैंने एक दिन कलवा के खेत में से मटर के कुछ पौधे उखाड़ लिये थे?"

"तो क्या अब उसके मटर के पेड़ लौटाने जा रहे हो?" मेरे पिता हंसने लगे।

"जी, वह पेड़ अब कहां रहे।"

"फिर—?"

"मैं उससे जाकर कहूंगा कि वह मुझे इन चन्द पौधों के लिए क्षमा कर दे, या फिर वह उनका "हर्जाना" (मुआवज़ा) लेना चाहेगा तो मैं वह भी देने को तैयार हूं।"

"मगर ये सब तुम किस लिए कर रहे हो।" मेरे पिता ने अत्यन्त गम्भीर स्वर में पूछा।

"जी अल्लाह का आदेश है, मैं उन पापों को माफ नहीं करूंगा जो दूसरे इन्सानों को दुःख पहुंचा कर हुए होंगे, जब तक कि वे स्वयं इसके लिए उसे माफ न कर दें।

उसी सप्ताह एक रात मेरे पिता पर निमोनिया का तीव्र हमला हुआ और वे इस रोग से कई दिन पीड़ित रह कर अन्त में एक शाम को हमसे विदा हो गए।

अपने देहावसान से कुछ घन्टे पूर्व इस्लाम के विषय में मेरे पिता की सही भावनाएं क्या थीं? क्या वह कुछ दिन और जीवित रहते तो इस्लाम ग्रहण कर लेते ? इस सम्बन्ध में कोई बात विश्वास के साथ नहीं बता सकता फिर भी उनके मन में मरने से पहले गांव के किसी एक मुसलमान के लिए भी घृणा की भावना नहीं थी।

"मेरे पिता ने अपने अन्तिम समय में अपना उत्तराधिकारी समझ कर मुझे अनेक उपदेश दिए, उनमें एक उपदेश यह भी था कि मैं मुसलमानों की ओर से अपने हृदय में कभी द्वेष, बैर, शत्रुता और वैमनस्य की भावना पैदा न करूं। ये लोग अपने विचारों, धारणाओं तथा रीति-रिवाजों में भले ही हमसे भिन्न हैं, परन्तु बहरहाल भले लोग हैं।"

अपने पिता के देहान्त के बाद इस क्षेत्र के धार्मिक नेतृत्व का

श्रेष्ठ पद अब मुझे हासिल होने वाला था।

इस सम्बन्ध में अगले सप्ताह एक उत्सव मनाया जाता। इस उत्सव का विशेष पहलू यह हुआ करता था कि उस क्षेत्र के तमाम लोग जो हमारे परिवार का धार्मिक संरक्षण स्वीकार करते थे, एक निर्धारित तिथि पर हमारे यहां एकत्र होते, भिन्न-भिन्न प्रकार के भोजन तैयार किये जाते, देवी-देवताओं की मूर्तियों के सम्मुख नए पेशवा को एक अत्यन्त बहुमूल्य वस्त्र पहनाया जाता और अन्त में पेशवा के सामने दक्षिणा पेश की जाती। यह दक्षिणा नक़दी के रूप में भी होती तथा अन्य सामानों के रूप में भी।

इस उत्सव का कार्यक्रम साधारणतया तीन दिन तक चला करता था तथा इन तीन दिन में और भी कई पैत्रिक रस्में अदा की जाती थीं।

अब मेरे लिए जहां यह अत्यन्त शानदार उत्सव और इससे सम्बन्धित अन्य बहुत से लाभ थे, वहां मेरे मन में एक और अभिलाषा करवट बदल रही थी।

इस तरह अब मेरे सामने दो मार्ग थे—

एक सांसारिक वैभव, सम्मान का तथा दूसरा आख़िरत (परलोक) की सफलता का। यह दोनों ही मार्ग एक ही समय में इतने अधिक आकर्षक और मनमोहक थे कि सफलता पूर्वक किसी एक मार्ग का चयन करना मेरे जैसे व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं था।

मैं जिस मार्ग के विषय में सोचता वह अपने बाह्य या आन्तरिक सौन्दर्य के सहत्रों दृश्य मेरे सम्मुख रख देता और विश्वास कीजिए में कुछ क्षण के लिए उसी का हो रहता।

मैं लगातार कई दिन तक सोचता रहा और इसी बीच मैंने एक बात विशेष रूप से महसूस की और वह यह थी कि मुझे न केवल इस

समय बल्कि भविष्य के लिए भी मानसिक शान्ति की आवश्यकता है।

फिर एक बात यह भी मुझे अत्यन्त प्रभावित कर रही थी–

शेख़ जमालुद्दीन एक अल्लाह वाले बुज़ुर्ग थे। यह बुज़ुर्ग एक बार क़ाशगर में तीन सौ मील तक पूर्व दिशा की ओर आकसू ही आबादी के समीप देश निकाले की हालत में यात्रा कर रहे थे। उन्हीं दिनों संयोग से एक तातारी राजकुमार तुगलक तैमूर खां शिकार के लिए आया हुआ था। उसका आदेश था कि प्रजा के तमाम लोग उसके साथ शिकार में शामिल हों, चुनांचे उस क्षेत्र की सारी आबादी उसके साथ थी। सहसा उसकी दृष्टि जमालुद्दीन और उनके साथी पर पड़ी जो एकान्त में बैठे हुए आराम कर रहे थे। तैमूर खां ने आदेश दिया कि इन लोगों को मेरे सामने पेश किया जाय।

शेख साहब के क़रीब आने पर शहज़ादा तैमूर खां ने गुस्से से कहा–

"मेरा आदेश है कि सारी प्रजा मेरे साथ चले। फिर मेरी आज्ञा के विरुद्ध तुम यहां कैसे बैठे हो?"

"हमं परदेसी लोग हैं और हमें आपके आदेश की बिल्कुल ख़बर नहीं थी।" शेख़ साहब ने बहुत नर्मी के साथ उत्तर दिया।

यह सुन कर ख़ान ने उन्हें छोड़ दिया मगर अपने एक शिकारी कुत्ते की ओर जिसे वह सुअर का मांस खिला रहा था, संकेत करके कहने लगा–"ओ बुड्ढे बता कि तू इस कुत्ते से अच्छा है या कुत्ता तुम से अच्छा है?"

शेख़ साहब ने बड़े धैर्य के साथ उत्तर दिया–"यदि मुझमें ईमान है, तो मैं अच्छा हूं वरन् कुत्ता मुझसे अच्छा है।"

ख़ान शहज़ादे के हृदय पर इस उत्तर का ऐसा प्रभाव हुआ कि

उसने तुरन्त आदेश दिया कि इन्हें घोड़े पर सवार करके मेरे डे (तम्बू) में ले आओ!

शेख़ जमालुद्दीन जब तैमूर के डेरे में आये तो उसने पूछा—"वह क्या चीज़ है जो इंसान को कुत्ते से बेहतर बनाती है?"

शेख़ साहब ने उत्तर दिया—इस्लाम और फिर इस्लाम की व्याख्या इस प्रकार से की कि,ख़ान बेधड़क रोने लगा। अन्त में उसने कहा—"अभी मेरे अधिकार सीमित हैं, जब मैं सिंहासन पर बैठूं उस समय मेरे पास अवश्य आना। मैं वचन देता हूं कि उस समय मैं मुसलमान हो जाऊंगा।"

और वास्तव में वह अपने दिये हुये वचन के अनुसार सिंहासन पर बैठने के बाद शेख़ जमालुद्दीन के पुत्र शेख़ अरशदुद्दीन के हाथों ईमान ले आया और इस्लाम में दाख़िल हो गया।

यह घटना मैंने एक सामूहिक भाषण के अवसर पर सुनी थी और उसी दिन से "ईमान" तथा "इस्लाम" की बात मेरे मन में बैठ गयी थी।

पेशवाई ग्रहण करने के उत्सव से एक दिन पहले मैंने सम्पूर्ण क्षेत्र में यह घोषणा करा दी—मैं मुसलमान हो चुका हूं और अब किसी प्रकार का कोई पर्व नहीं मनाया जाएगा।

इसके बाद मैंने वह सारी सम्पत्ति व मिलकियत जो इलाक़े के दीन—दुखी लोगों की ओर से मेरे पूर्वजों को दक्षिणा के रूप में मिली थी उन्हें या उनके उत्तराधिकारियों को वापस कर दी और शायद यही मेरे लिए उचित भी था।